प्रकाशक का प्रस्तावना।

इस पुस्तक में लाला हरदयाल जी के अंगरेज़ी लेखों का अनुवाद है। पहिला लेख स्वयं उनका लिखा हुआ है और बाकी सब अनुवादित हैं। इनमें से लगभग सभी हिन्दी पत्रों और पत्रिकाओं में निकल चुके हैं।

मैं सरस्वती, मर्यादा, अभ्युदय, सद्धर्म प्रचारक, गृहलक्ष्मी और स्वदेश बान्धव के सम्पादकों का बहुत ही कृतज्ञ हूँ जिन्होंने उपरोक्त पत्रिकाओं और पत्रों में निकले हुए इन लेखों के छापने की आज्ञा देदी है अन्त में मैं अपने मित्र श्रीयुत गणेशशंकर जी विद्यार्थी का बहुत अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के निकालने में मेरी बड़ी सहायता

विनीत

नारायण प्रसाद अरोड़ा

विषय सूची ।

भूमिका।

श्रीयुत लाला हरदयाल एम. ए. के नामसे देश का शिक्षित समुदाय अपरिचित नहीं। उनकी लेखनी में जादू है। उनके एक एक शब्द में ऐसी विलक्षण शक्ति है कि कट्टर से भी कट्टर आदमी एक बार उनके शब्दों की बाढ़ के सामने नहीं ठहर सकता। उनकी भाषा में वह ग़ज़ब का ओज है कि वे हृदय तक फड़क उठते हैं जिन पर उदासीनता की घटा छा गई हो और जो संसार के लिये मृत-प्रायः हो चुके हों। उनकी भाषा में प्रवाह भी इतना ज़बरदस्त है कि शब्द पर शब्द—और एक से एक सुन्दर—निकले पड़ते से मालूम होते हैं। उनके शब्दों में मौलिकता कूट कूट कर भरी रहती है। उनके भावों से प्रतिभा फूटी पड़ती है। उनकी इन शक्तियों का लोहा बड़े बड़े आदमी मान चुके हैं। उनके विरोधियों तक ने स्वीकार कर लिया है कि वे एक प्रकृति पुरुष हैं।

उनके लेख अधिकतर अंगरेज़ी भाषा में निकलते हैं। वे लिखते तो बहुत दिनों से हैं। उर्दू में भी उन्होंने कुछ लिखा और फ्रांस के पत्रों के लिए फ्रेंच में भी। परन्तु हाल में उनके जो लेख निकले हैं, उन्हों ने और उनके अनुवादों ने देश में एक तहलका मचा दिया है। लोग चौंक से पड़े हैं।

लेखक हरदयाल जी की योग्यता और प्रतिभा का पूरा पूरा क़ायल है। हमारे देश में उन आदमियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है जो उनके समान पाण्डित्य में बढ़े चढ़े हैं। वे

राजनीति और दर्शन शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। संसार का इतिहास उनकी उङ्गलियों पर है। फ्रेंच, संस्कृत और फ़ारसी के भी वे पण्डित हैं। यदि उनमें असाधारण योग्यता न होती तो आज हमें संयुक्त-राज्य अमेरिका के एक बड़े भारी विश्व-विद्यालय में हिन्दू दर्शन-शास्त्र के अध्यापक के आसन पर किसी हिन्दुस्तानी को बैठे हुए देखने का गर्व प्राप्त न होता।

उनके विचारों में बड़ा ही परिवर्तन हुआ है। एक समय था कि दुनियां उन्हें 'संस्कृत-मयी' देख पड़ती थी। शास्त्र और पुराणों ही में उन्हें संसार की सारी फिलासफी भरी देख पड़ती थी। प्राचीन संस्थायें उनके हृदय में देश के भावी जीवन के सुन्दर चित्र खींचने लगीं। लेकिन रंग पलटा। हरदयाल जीने देश को छोड़ा और उनके पुराने ख़यालातों ने भी उनका साथ छोड़ा। आज वे अपने देश वासियों के पास सन्देश भेजते हैं कि पुराने कपड़े आग में डाल दो, नये धारण कर लो। वर्तमान समय की काशी, पुरी, रामेश्वर, और मक्का जेनिवा, पेरिस, बर्लिन और न्युयार्क को समझो। हरदयाल जी के इन विचार-परिवर्तनों को मैं अनुचित नहीं समझता संसार की उन्नति का रहस्य ही परिवर्तन है। हमें आगे बढ़ना ही पड़ेगा, या मर जाना होगा। आगे बढ़ने के लिए हम पीछे मुंह किये हुए नहीं चल सकते। हमारा भूत-काल कितना ही अच्छा क्यों न हो लेकिन उसके मीठे राग गाने ही से हमारा काम नहीं चल सकता। प्राचीन सभ्यता का गर्व हमारे लिए आगे बढ़ने में सोने की ज़ञ्जीर सिद्ध न होना चाहिये।

हरदयाल जी में और भी कितने ही बड़े मार्के के गुण हैं। वे पक्के देशभक्त हैं। उनकी देश-भक्ति साधारण ढंग की भी नहीं। वह सच्चे प्रेम के दर्जे तक पहुंच चुकी है। इन्द्रिमता

उनके पास फटकने नहीं पाता। उनका एक एक अक्षर कह देता है कि जो कुछ वे लिखते हैं वह उनके हृदय का उद्गार होता है। वे समता के सिद्धान्त के सच्चे अनुयायी हैं। उनके रहन-सहन की सादगी, उनके सच्चे व्यवहार और उनके शब्दों और कामों से समता का भाव टपका पड़ता है।

योग्य और प्रतिभाशाली होते हुए यदि वे सच्चे समता-वादी न होते, यदि उनका हृदय महान् न होता, तो देश की उद्धार और अधिकार का सन्देश सुनाते सुनाते वे अपने भक्तों पर ऐसा मंत्र चलाते कि वे उनकी व्यक्ति-गत उपासना में लग जाते और मानसिक गुलामी के गढ़हे में गिर पड़ते। लेकिन यह उनके हृदय का असाधारण उदारता है कि उन्हें नाम की ज़रा भी पर्वाह नहीं। यदि हरदयाल जी में इसके सिवा और कोई गुण न भी होता, तो यही इतना काफ़ी था कि उनके मित्र और शत्रु दोनों के हृदय पर उनकी महत्ता का सिक्का जम जाता।

एक बात उनमें और भी बड़ी भारी है। केवल स्वदेश-प्रेम के लिए उन्हें जो जो नुकसान सहने पड़े तथा जो जो विपत्तियां झेलनी पड़ी हैं, देश में बहुत ही कम आदमी निकलेंगे, जिन्हें वैसे ही कष्ट और वैसीही आपत्तियों का सामना करना पड़ा हो। लेकिन वे उस तपे हुए सोने के टुकड़े की तरह हैं जो जितना ही अधिक आग में डाला जाता है उतनाही चमकदार बनता जाता है।

अब आप उन्हीं के लेखों को पढ़ें और ज़रा ध्यान से विचार करें।

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की ज़रूरत।

पंजाब में हिन्दी के प्रचार की बड़ी ज़रूरत है। भारत-वर्ष का यह भाग प्राचीन समय में वेद-विद्या का अधिष्ठान था। धर्म्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र इसी भूमि में है। मंत्रद्रष्टा ऋषि इसी की नदियों के तट पर समाधि लगाये ध्यान में मग्न रहते थे। यहीं हिन्दू-जाति ने पहले पहल भारत को देखा और उससे सम्बन्ध बाँधा। पंजाब भारतवर्ष की ढाल है जिसने यवनों की अनेक चोटों से इस देश की रक्षा की। पंजाब ही में बली होकर हिन्दुओं ने सारे मुल्क पर अपना अधिकार जमाया। यह वही प्रान्त है जहाँ के शूर वीरों ने पुराने ज़माने में, और सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों में, हिन्दू जाति के मलिन मुख को विजयामृत के सेचन से विमल करके उस पर राज्याभिषेक का टीका लगाया।

हाय! इसी पंजाब की दशा इस समय शोचनीय हो रही है। विदेशियों के सम्पर्क से बहुत बातों में इसका हिंदुत्व शिथिल हो गया है। बंगाल और महाराष्ट्र की अपेक्षा पंजाब का हिंदुत्व ऐसाही है जैसे सच्ची लैस के आगे झूठी लैस, या खिले हुए कमल के सामने मुरझाई हुई पंखड़ियों का ढेर। जिधर देखो हिंदू जाति की हीनता का सबूत मिलता है। सब तरफ़ घर में, बाज़ार में, साहित्य में, बोलचाल में, रूप-रंग में, आचार-विचार में, हम हिंदू जाति की असलियत को मिटा हुआ देखते हैं। हम पर विदेशी रोग़न चढ़ा हुआ है। हम अपने आपको भूल गये हैं। महात्मा मनु के अनुसार जैसे काठ का हाथी अथवा चमड़े का मृग केवल नाम ही के

होते हैं, उसी तरह पंजाब के हिन्दू अपनी भाषा के लिहाज़ से नाम मात्र के हिन्दू हैं। वे भारतवर्ष में रहते हुए भी विदेशी कहलाने योग्य हैं। मैं इस अवसर पर और बातों का ज़िक्र न करूँगा। मैं केवल भाषा के विषय में यह कहना चाहता हूँ कि अब समय आ गया है कि हम श्रीगणेश की प्रशंसा तुरकों के अक्षरों में न करें और अपनी पिछली गिरी हुई अवस्था के कलङ्क को सदैव तिलक समझ कर अपने माथे पर ख़ुशी से न लगावें। जो मलिनता हमारे शरीर पर आपत्काल में आ गई थी उसको हिन्दुत्व के पवित्र सरोवर में नहा कर धो डालें। जैसे शराबी नशे में तरह तरह की लज्जाजनक बातें करता है, पर नशा उतर जाने पर उनसे शरमाता है, उसी तरह कमज़ोरी और आत्मविस्मृति के समय में जो अनुचित बातें हमने की थीं उनसे अब लज्जा आनी चाहिए। क्या ज़रूरत है कि दास आज़ाद होकर भी कान में गुलामी का छल्ला पहने रहे, या पहलवान, ज़मीन पर चित हो जाने पर कभी, पीठ की मिट्टी साफ़ न करे। हिन्दू जाति को धिक् है, जो दैव-दुर्विपाक से प्राप्त हुई लज्जाजनक बातों को मौक़ा पाकर भी न छोड़े।

पंजाब अपनी भाषा को बहुत समय से भूल गया है। हिन्दुत्व के ज्ञान का दीपक उसे किसी ने नहीं दिखाया। पर-जातियों की आँखों के जादू ने इसे अन्धा बना दिया। विजित होने से इस पर आत्मविस्मृति का ऐसा नशा चढ़ा कि वह बहँक सा गया; अपने आपको कुछ का कुछ बतलाने लगा; बहुरूपियों का सा खेल खेलने लगा। जैसे मालिक के उतरे हुए कपड़े पहन कर नौकर मटकते फिरते हैं, उसी तरह मुसलमान क़ौम के फटे पुराने साहित्य के चीथड़े चुन कर हिन्दुओं ने भी अपनी भाषा को अलंकृत (!) करना आरम्भ

किया। यह नहीं समझा कि दुनिया हमें क्या कहेगी। तुलसी और सूर के काव्य न पढ़ कर सौदा और मीर की तुच्छ ग़ज़लों पर ऐसे गिरे जैसे बच्चा माँ का पथ्य दूध छोड़ कर मिट्टी खाने दौड़ता है। फ़ारसी-साहित्य की हम नक़ल उतारने लगे और अपनी पुरानी करी कराई सब भूल गये। उर्दू के गद्य-पद्य में फ़ारसी शाइरों से माँग माँग कर विदेशी अलंकार भरने लगे। नाटक का नाम तक बाक़ी न रहा। क़सीदों, मसनवियों, ग़ज़लों ने दोहों, चौपाइयों की जगह ली। हिन्दुओं की सारी लियाक़त, झूठे सिक्कों की तरह, उर्दू के रद्दी सिक्के हिन्द की टकसाल से निकालने में चली गई और कुछ फल न मिला। झूठा सिक्का जो बनाया, साहित्य के परखने वाले साहूकारों ने उसे परे फेंक दिया। विदेशी चीज़ें कूट कूट कर अपने साहित्य में भरीं। नतीजा यह हुआ कि अपनी रीति तो याद न रही, मुफ़्त में नक़लची और ख़ुशामदी कहाये। न ख़ाक़ानी ही बन सके न तुलसी। न फ़ारसी ही लिखी न हिन्दी। एक मिश्रित भाषा, जिसमें दोनों का मेल था, निकाली। मगर जैसे मनुष्यों में दोग़ले से सब नफ़रत करते हैं इसी तरह इस नये भूत से जिसका धड़ हिन्दी का, और कपड़े और आवाज़ फ़ारसी के थे, सब समझदार आदमियों ने नफ़रत की। नमक और बूरा मिलाने से सिर्फ़ उलटी ही हो सकती है। मछली पानी के बाहर मर जाती है। अंगूर सर्दी में नहीं उगता। हर क़ौम अपने मुआफ़िक़ साहित्य की आबोहवा में ही तरक़्क़ी कर सकती है। जब साहित्य हमारे मुल्क और क़ौम के अनुरूप न रहा तब वह हमारा न रहा। वह हमारी जाति का अंश नहीं। वह हमारे आदर का पात्र नहीं। वह हमारी दुर्गति की निशानी है और हमारी जातीय उन्नति के रोकने के लिये बलवान विघ्न है। वह गृह-सर्प है कि दग़ा

करता है। वह वेश्या है जो झूठे आभूषण पहन कर हमें अपनी कुल-स्त्रियों से अलग कराती है। विदेशी रस से भरे हुए साहित्य को जो हिन्दू अपना समझते हैं वे हलाहल को अमृत मानते हैं। इससे बढ़ कर हमारी अधोगति का और क्या चिन्ह हो सकता है कि आज हिन्दी भाषा, जब हिन्दुओं के आगे आकर अपनी पैत्रिक पदवी माँगती है, तब हिन्दू हिन्दी-शकुन्तला के दुष्यन्त बनकर कहते हैं, हम तुझे नहीं जानते, हमने कभी तुझे नहीं देखा।

पंजाब में रोज़ की बोलचाल और लिखने पढ़ने में फ़ारसी मिश्रित उर्दू ही का दौर दौरा है। यहाँ हिन्दू लड़के फ़ारसी पढ़ते हैं। मदरसे में मौलवी साहब की जमाअत ऐसी भरी होती है जैसे थियेटर की रङ्गभूमि। पर बेचारे संस्कृत के अध्यापक का कमरा खँडहर की तरह सूना रहता है। यदि कोई भूले भटके वहाँ जाते हैं तो सिर्फ़ दो चार। शोक है कि जिन लड़कों की क़ौम में वाल्मीकि और तुलसी हुए वे गुलिस्ताँ बोस्ताँ के पढ़ने में इतना परिश्रम करें; और हितोपदेश का नाम भी न सुनें! किस क़ैदी को अपनी बेड़ियों से प्रेम हो सकता? किस मनस्वी को अपनी मातृभाषा से घृणा हो सकती है? पर भारतवर्ष में सब बातें उलटी हैं। पंजाब के हिन्दुओं के नाम तक अनोखे होते हैं। "बलन्द-इक़बाल" हिन्दू कुल में उत्पन्न होते हैं। और "तेग़-बहादुर" तो हमारे माननीय गुरुजी ही का नाम था। पत्र में "जनाब क़िबलेगाह साहब" से आरम्भ किया जाता है। गोया यमुना के तट पर अरब की गरम आँधी का झोंका आ गया। विवाह के बुलावे कई ज़ातों में फ़ारसी में भेजे जाते हैं—गोया निकाह पढ़वाना है। कई हिन्दू सज्जनों के यहाँ मुसल्मान उस्ताद फ़ारसी पढ़ाने के लिए रक्खे जाते हैं और पंडित जी महाराज! उन

को सिर्फ़ गुरु-पूजा ही पर कुछ दक्षिणा मिल जाती है। जवान लड़के ग़ज़ल लिखते हैं और कमल को भूल कर गुल पर मरते हैं। भीम की जगह रुस्तम की प्रशंसा होती है और काबा, मसीहा, वग़ैरा विदेशी शब्दों से गद्य पद्य अलंकृत होता है। कहावतें भी कितनी ही ऐसी हैं कि सुन कर हँसी आती है और रोना भी। "ढाई ईंट की अलग मसजिद बनाना," "न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम" वग़ैरा फ़िकरे सब की ज़बान पर हैं। यदि रामचन्द्र आज फिर दिल्ली में आवें तो हिन्दुओं को न पहचान सकें। वे आश्चर्य्य करें कि मैं भारत-वर्ष में हूं या कहीं और। उर्दू का हर घर में रिवाज है। लड़कियाँ भी हिन्दी पढ़ कर फिर उर्दू सीखना बहुत बड़ा काम समझती हैं। जैसे मीठी चीज़ खा कर खट्टी को जी चाहता है वैसे ही इनका हाल है। घर के हिसाब तक में घी, रौग़न उर्दू लिखा जाता है। और चिट्ठियों के ऊपर पते में "बख़िदमत·····बिरसद" आदि शब्द सारी दुनिया में हमारे अज्ञान की डौंडी पीटते हैं। राम राम और नमस्कार की जगह "बन्दगी" सुन सुनकर कान बंद करने को जी चाहता है।

स्त्रियों ने अपना जाति-धर्म हाथ से जाने नहीं दिया है। स्त्रियां सदा अपनी जाति के प्राणों की रक्षा करती हैं। क्यों न हो, प्राण देती भी तो वही हैं। हिन्दू स्त्रियां हिन्दी पढ़ना अपना मुख्योद्देश्य समझती हैं। उनके लिए अच्छी अच्छी पुस्तकें हिन्दी में लिखी जानी चाहिएँ जिसमें उनको उर्दू पढ़ने की ज़रूरत न रहे। भाइयो, इस त्रुटि को पूरा करो। स्त्रियों ही से हिन्दी के प्रेम की वृद्धि करो। कई समाजें पंजाब में ऐसी हैं जो हिन्दी-प्रचार का कुछ काम कर रही हैं। आर्य्य-समाज इनमें मुख्य है। देव-समाज के

अनुयायी भी हिन्दी में ही व्याख्यान देते हैं। राधास्वामीवाले भी अपने मत के ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखते हैं। इन सब समाजों और संप्रदायों से हिन्दी की कुछ कुछ उन्नति हो रही है। आर्य्य-समाज ने फ़ारसी अक्षरों में बहुत से हिन्दी के शब्दों को स्थान दिया। इससे जो हिन्दू हिन्दी नहीं जानते उन तक हिन्दुत्व की कुछ सुगन्ध पहुँच सकती है। इस हिन्दीमिश्रित उर्दू को ग़ालिब और ज़ौक़ के कलाम के चाहने वाले निरादर की निगाह से देखते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है।

आजकल युवक विद्यार्थी दूर दूर कालिजों में पढ़ने जाते हैं। परन्तु अपनी स्त्रियों को घर पर छोड़ जाते हैं। उन्हें पत्र लिखना पड़ता है। हमारी स्त्रियां प्रायः हिन्दी ही जानती हैं। उन्होंने तो नौकरी के लिए अपना जाति-धर्म बेचा नहीं। वे अब तक अपनी जाति-भाषा को रत्न की तरह छिपाये अन्तःपुर में बैठी हैं कि कब पुरुषों की बुद्धि ठिकाने आवे और कब उनको यह अनमोल मोती फिर प्राप्त हो। क्यों न हो, वैसे भी तो घर की सम्पत्ति सोने चांदी के रूप में स्त्रियों ही के शरीर पर रहती है! इस कारण नवयुवक बाबू साहबों को हिन्दी पढ़नी पड़ती है। जो काम वे गुरु के कहने से न करते वह स्मरशासन करवा लेता है। सच है सब तो त्रिलोचन नहीं हैं जो फूल के धनुष वाले को भस्म कर दें। अतएव जितने विद्यार्थी दूर देश में जायँगे उतना ही हिन्दी का प्रचार अधिक होगा।

इस प्रकार हिन्दी धीरे धीरे फैल रही है। पर इस जनवासे की चाल से विशेष लाभ न होगा। जब तक कचहरियों और दफ़्तरों में उर्दू अधिकार के सिंहासन पर बैठी है और हिन्दू लोग संस्कृत पढ़ना अपना धर्म नहीं

समझने, तब तक हिन्दी की यथार्थ उन्नति न होगी । एक और बात भी विचार-योग्य है। बहुत से आदमी मुँह से तो हिन्दी के प्रेमी बनते हैं, पर कोई किताब या लेख लिखने के समय उससे मुँह छिपाते हैं। यह दोष हिन्दी के बड़े बड़े भक्तों तक में पाया जाता है। जब हिन्दी के पक्षपाती ही ऐसा करेंगे तब औरों से क्या आशा की जाय? ज़बानी बातों सेकहीं काम चलता है? पंजाब में है उर्दू का प्रचार। इससे उर्दू ही की पुस्तकों के गाहक अधिक हैं। जब लेखक साहित्य के मैदान में आते हैं तब देश प्रेम तो हिन्दी की ओर घसीटता है और द्रव्य-प्रेम उर्दू की ओर। इस दुविधा में महामाया लक्ष्मी ही की जीत होनी है। फिर यह भी विचार होता है कि अपने सिद्धांत उर्दू में अधिक लोगों के पास पहुँचेंगे। इससे वे अपनी विचार-सुगन्धि को तांबे के पात्र में रखते हैं, क्योंकि सोने का पात्र लोगों को पसंद नहीं। इससे बेचारी हिन्दी के गले में छुरी फिरती है। लाला लाजपतराय जी ने उर्दू में कई महापुरुषों के जीवन-चरित लिखे हैं। और आर्य्य-समाज-कालिज के एक महाशय ने आनन्दमठ का बंगाली से उर्दू में अनुवाद किया है। यदि इसी तरह हमारे हाथ और क़लम उर्दू की सेवा में तत्पर रहे तो पंजाब में हिन्दी का प्रचार होना दुःसाध्य होगा। हम को दूरदर्शी होना चाहिए। और हर प्रयत्न से, सब विघ्न-बाधाओं का उल्लंघन करके हिन्दी लिखना-पढ़ना सीखना चाहिए, हिन्दी बोलना चाहिए और हिन्दी ही में पुस्तक-रचना करना चाहिए। ऐसा न करना अपनी जाति को दुर्बल करना है; अपने हाथ से अपनी जड़ें खोदना है; हिन्दुत्व पर धब्बा लगाना है!

(सरस्वती)

भाषा और जाति का सम्बंध ।

एक विद्वान् का कथन है कि भाषा बिना कोई जाति जीवित नहीं रह सकती । भाषा ही किसी भी जाति की एकता का एक मात्र आधार है और भाषा ही जाति के पुरुषों में परस्पर प्रेम और व्यवहार का सम्बन्ध स्थापित करती है। भाषा ही के द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अपने भाव प्रगट कर सकता है। बात तो यह है कि बिना भाषा के भाषण किये क्या कोई मनुष्य आनन्द से जीवित रह सकता है ? नहीं। अपने जन्मस्थान को, जिस के जल वायु को सेवन कर हम पलते हैं, हम अपनी मातृभूमि कह कर प्यार करते हैं उसी प्रकार हमें अपनी भाषा को भी, जो कि हमारे जातीय जीवन का एक स्तम्भ है, मातृभाषा कह कर गद्गद होना चाहिये ।

हिन्दू सदैव से उन चीज़ों को बड़ा समझते आये हैं जिनसे मानव जाति का किसी न किसी अंश में उपकार होता आया है । गौ, गंगा और भारत भूमि को वे माता के नाम से पुकारते हैं। फिर हम अपने सब सुखों की जननी अपनी हिन्दी भाषा को मातृभाषा कह कर क्यों न पुकारें ? यदि किसी शक्ति के द्वारा हम से अपनी भाषा छिन जावे तो हमारी कैसी दुर्दशा होगी इस बात के विचारने से ही दुःख होता है क्योंकि प्रत्येक जाति की धर्म्म सम्बन्धी बातें, नीति, विज्ञान उसकी भाषा ही में रहते हैं। भाषा बिना हम जीवित नहीं कहला सकते। संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा में जो रत्न भरे पड़े हैं उन को हम बिना भाषाओं के जाने कैसे जान सकते हैं ? जो जाति अपने पुरुखाओं के चरित्र और अपने भूतकाल को नहीं जानती वह जड़से उखड़े हुए वृक्षके समान

है। जब पिता पुत्र को अपनी भाषा पढ़ाता लिखाता है तब ही वह पितृऋण से मुक्त होता है। भाषा के द्वारा हम अपने पूर्व पवित्रात्मा पुरुषों का जीवन देख सकते हैं और उनके सदृश ही अपने जीवन को ढाल सकते हैं। सच तो यह है कि अपनी मातृभाषा के साहित्य भाण्डार को बढ़ाना पूर्व पुरुषों का उतनाही शान्ति और सुखकारक है जैसा कि उन का श्राद्ध करना बताया जाता है।

उपर्युक्त कारणों से ही जो जाति जीवित है वह अपनी भाषा के लिये झगड़ती है और मातृभाषा को जीवित रखने का पूर्ण उद्योग करती है। गिरी पड़ी जातियां भी इस उन्नति के सूत्र को समझती हैं और मातृभाषा के लिये कुछ न कुछ उद्योग करती रहती हैं। वे "धर्म्म" के समान अपनी भाषा की भी रक्षा करती हैं। संसार के इतिहास में ऐसी जातियों के कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं। बूर गंवार किसानों ने अपनी स्वाधीनता और सर्वस्व खो दिया है परन्तु अपनी मातृभाषा के बोलने का स्वत्व नहीं छोड़ा। उनकी भाषा ही वहां के दफ्तरों में लिखी पढ़ी जाती है।

अंगरेज़ों का यह अभिमान के साथ कथन है कि उनके युवा केवल एकही भाषा को अच्छी तरह बोल सकते हैं और वह भाषा उनकी मातृभाषा अंगरेज़ी ही है। यह उनका वचन स्वजात्यभिमान और देशभक्ति से कैसा परिपूर्ण है। संसार के इतिहास में यह बात देखी गई है कि जब एक जाति दूसरी पर जय लाभ करती है तो विजेता विजित जाति की भाषा की कमर तोड़ने में भी कमी नहीं करती और इसीलिये अपनी भाषा का आधिपत्य दूसरी जाति की भाषा पर जमाती है कि विजित जाति अपनी भाषा को खोकर अपनी भूतकाल की प्राप्त कीर्त्ति और यश को भूल जावे। सिकन्दर ने जिन २

देशों पर जय लाभ किया उन २ देशों में ग्रीक भाषा का प्रचार किया। ऐसा ही रोमवालों ने भी अपनी बढ़ती के समय किया था। अंगरेज़ों ने आयरलैंड में अंगरेज़ी स्कूल कालेज खोल कर यही चाल चली थी। भारत में भी अंगरेज़ी के प्रचार ने हमारी मातृभाषा को और जातीय जीवन को बड़ी हानि पहुंचाई है क्योंकि भारत में जिधर देखते हैं उधर ही अंगरेज़ीभाषाजनित सभ्यता दीख पड़ती है।

भारतवासी अपनी मातृभाषा हिन्दी से बड़े पराङ्मुख हुए हैं। उन्हें किसी भले आदमी के नाम के आगे मिस्टर लगाना महत्वसूचक जंचता है। क्लब और दवाईख़ानोंके नाम भी अंगरेजी में धरे जाते हैं। बाज़ारों में, किताबों में, समाचार पत्रों में, अपनी घरेलू लिखापढ़ी में सारांश यह कि सब स्थानों में अंगरेज़ी का आदर किया जाता है। पंजाबी को युक्तप्रदेशवासी अपने उच्च विचार समाचार पत्रों द्वारा सात हज़ार मील की भाषा में समझा सकता है। अपनी देश भाषा में नहीं, हाय यह कैसी बुरी बात है।

यदि नारद जी महाराज आज कल भारत में भ्रमण करते आ निकलें तो हम को अपनी सन्तान कहने में वह अकचका आयेंगे। और तो और हमने अपनी मातृ भाषा हिन्दी भी छोड़ दी। नारद जी हमें शायद भांड़ जानें। इसमें दोष चाहें किसी और का भी हो किन्तु बड़ा दोष हमारा है जिन्होंने अपनी मातृभाषा का पूजन त्याग दिया है। सरलता, शुद्धता, और पूर्णता में हिन्दी भाषा की बराबरी दूसरी भाषा नहीं कर सकती। मातृभाषा को भूलना कृतघ्नता है। स्मरण रक्खो जिस का भाषासाहित्य नष्ट हो जाता है वह जाति भी नष्ट हो जाती है। प्रकृति का ऐसा ही नियम है। मातृभाषा का आदर करो और अपने हृदय पर बैठाओ। [स्वदेश बान्धव]

धर्म्म प्रचार।

ईसाई मत की सफलता का मुख्य कारण उन के प्रचारकों का अदम्य उत्साह है। कितने ही उन में विद्या योग्यता में प्रसिद्धता प्राप्त किये हुए पुरुष होते हैं। यदि हमें ऐसे कार्य्य करने वाले प्राप्त हो जावें तो हम २० वर्ष में बहुत कुछ दुनिया को हिन्दू बना सकते हैं। मुझे बिलकुल ऐसे ही उत्साही पुरुष दीजिये, मैं दुनिया को हिन्दू बना दूंगा। असत्य भी प्रचार पा सकता है यदि उन के प्रचारक असत्य के प्रचार करने के लिये वास्तविक उद्योग करें। हिन्दू धर्म और कीर्त्ति के सच्चे प्रचारक यदि मुझे मिल जावें तो मैं यह कह सकता हूं कि यूरोप के नगरों में रामलीला का दृश्य दिखला दूंगा। मैं जानकी की मूर्त्ति वहां के चौराहों पर सुप्रतिष्ठित करा दूंगा।

मुझे वैसा उत्साह वैसी कार्य्य करने की दृढ़ता दीजिये फिर आप देखेंगे कि मिसिसपी के तट पर हमारे ऋषियों की ऐसीही पूजा होती है जैसी कि यहां गंगा के तट पर होती है। हिन्दुओं को ऐसी सफलता प्राप्त होनी कुछ असम्भव नहीं है यदि उनमें दुनियां भर को हिन्दू बनाने का अदम्य उत्साह उत्पन्न हो जावे।

हिन्दुओं का अपने धर्म्म कर्म्म की बातों से कोरा रहना भी ईसाई लोगों की सफलता का एक मुख्य कारण है। गंगा स्नान से पाप दूर होने की बात को ईश्वर ही जानता है किन्तु क्यों नहीं देशहितैषिता के प्रेम में गंगा स्नान करते। गंगा हिन्दू जाति की बड़ी नदी है, इसके चारों ओर हमारा सामाजिक जीवन है, गंगा अपनी सुन्दरता में उपमा नहीं रखती। गंगा हमारे प्राचीन तपस्वियों की सहचरी है। इससे और मनुष्य

अपनी पूर्व कीर्त्ति को प्यार करते हैं उन्हें गंगा को प्यार करना चाहिये। गंगा में ही हमारे जगत्प्रसिद्ध पूर्वजों की भस्म डाली गई थी। हम उन्हीं के खून और हड्डी से उत्पन्न हैं। हम उस गंगाजल को पीते हैं जिसमें हमारे पुरुखाओं के शरीर अगणित पीढ़ियों से मिले हैं। गंगा हमारा अपने पूर्वजों से स्वर्ण शृङ्खला द्वारा सम्बन्ध और एकता स्थापित करती है।

भारतवासियों में देशभक्ति और आत्मसन्मान की कमी है इस कारण भी पादरियों ने सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य पदार्थविज्ञान के आविर्भाव के साथ २ हिन्दू अपने जातीय धर्म्म को प्यार करने में कमी करने लगे। यहां तक कि वे अपने बच्चों को ईसाइयों के पंजों से बचाने का ज़रा भी यत्न नहीं करते। स्वार्थ ने उनके सदाचार को ग्रस लिया और विषय विलास उनके सिर पर सवार होगया। हमारे धनाढ्यों में नशेबाज़, अपस्वार्थी, नीचप्रकृति, धोखेबाज़ और धार्म्मिक बातों में उदासीन कम नहीं हैं परन्तु अबभी ईसाई धनाढ्य अपने प्रचारकों को सब तरह का सुभीता देते हैं। यहां की धर्म्मसभाएं वैतनिक उपदेशक भी नहीं रख सकतीं।

हमारे देश के शिक्षित युवा अपनी विद्यायोग्यता को सरकार से कुछ रुपये लेकर दे डालते हैं या वकालत करके अपना लक्ष्मी-भाण्डार बढ़ाते हैं। क्या वे नहीं जानते कि तमाम सभ्य दुनियां के लोगों की दृष्टि में वे क्या चीज़ हैं? वे उन को नीच और लोभी प्रकृति के पुरुष समझते हैं क्योंकि वे अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये अपनी सब से प्यारी चीज़ का नाश करते हैं।

हिन्दू बालकों का ईसाई स्कूल कालेजों में पढ़ना भी हिन्दू जाति की जड़ खोद रहा है। किसी पादरी साहब से पूछा जाय कि आप के सच्चे सहायक कौन हैं तो वे जवाब

देंगे कि अंगरेज़ और अमेरिकन उनको स्कूल बनाने के लिये रुपया देते हैं किन्तु हमारा स्कूल ख़ाली पड़ा रहे और हमारे ईसाई मास्टर चुपचाप बैठे रहें यदि हमारे स्कूल में पढ़ने वाले ही न आवें, इस में यही लोग सच्चे सहायक हैं। हिन्दू माता पिता हमें अपनी सन्तान पढ़ाने को और अपनी मरज़ी के मुआफ़िक़ ढालने को सौंप देते हैं यही हमारे सच्चे मित्र हैं। इन्हीं के द्वारा हमारे सारे यत्न सफल होते हैं।

एक लज्जाजनक विषय और भी है कि हमारे अच्छे २ ग्रेजुएट और वेद शास्त्र चन्दनचर्चित पण्डित जी ईसाईयों को हमारे ईसाई बनाने में सहायता देते हैं। थोड़े से सिक्कों के कारण उन के नौकर बनते हैं। इस लेख का लेखक बड़ी मार्मिकता से पूछता है कि ये ऐसा महापातक क्यों करते हैं। क्या वे और ढङ्ग से अपना उदर पूर्ण नहीं कर सकते? क्या वे मिशन की सेवा बिना किये दाल रोटी से पेट नहीं भर सकते? यदि वे बिना ऐसा किये अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकते तो उनके जीवन की भी हिन्दू जाति को आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिन से हिन्दू जाति का लाभ न हो उन का जीवन मरण समान है। यदि कोई इस पृथ्वी पर बिना अपनी जाति को हानि पहुंचाए जीवित नहीं रह सकता तो बेहतर है कि वह मर जावे। जो पेट ऐसा कर्म्म करने को बाध्य करता है उस पेट का नाश होना अच्छा है बजाय इस के कि हिन्दू जातिका नाश हो। यह ज़रूरी है कि रोटी के लिये श्रम करना पड़ता है परन्तु जो पुरुष ईमानदारी से रोटी नहीं प्राप्त कर सकता बेहतर है कि वह इस दुनिया को त्याग दे।

(स्वदेश बान्धव)

अमरीका में भारतवर्ष।

इस पत्र के पाठकों में से बहुत ही थोड़े ठीक रीति से यह जानते होंगे कि भारतवर्ष के पुत्र चुपचाप इस सत्कार शील अमेरिका में क्या उत्तम कार्य्य कर रहे हैं। भारतवर्ष के साधारण लोग अमेरिका को वाशिंग्टन और इमर्सन के जन्म देश तथा "नीग्रो" लोगों की दौर्भाग्य-भूमि के रूप में ही जानते हैं। धार्मिक प्रवृत्ति रखने वाले कुछ नौजवानों के हृदय में, स्वामी विवेकानन्द के नाम के साथ भी अमेरिका सम्बद्ध हो सकता है परन्तु बहुत ही थोड़े लोग यह जानते हैं कि इस देश में बिखरे हुए हिन्दुओं के छोटे छोटे समूह अपने देश की क्या भलाई कर रहे हैं। आज मैं यही दिखलाना चाहता हूं कि यहां रहने वाले हिन्दू अब तक क्या कर चुके हैं और वे आगे क्या कर सक्ते हैं। मैं समझता हूं कि सारे संसार में केवल एक अमेरिका ही ऐसा देश है जहां से एक एकान्त वासी हिन्दू यात्री, अपने देश वासियों के लिये आशा और उत्साह से पूर्ण संदेशा भेज सकता है।

पश्चिमीय देशों में से अमेरिका सब से अधिक भारतवर्ष के साथ अनुराग रखता है और इसी कारण भारत के हृदय में भी, इस आशा और स्वतन्त्रता की भूमि के लिये प्रेम का होना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार एक बच्चा अपने पितामह की गोद में खेलना पसन्द करता है, उसी तरह, नई सभ्यता के पक्षपाती देशों में से सब से अल्प वयस्क और नव जात यह जाति भी, सब से पुरानी सभ्यता की बूढ़ी माता भारत भूमि का ध्यान करके प्रसन्न होती है। काल चक्र ने एक पूरा चक्कर समाप्त कर लिया है, और आने वाले समय की स्वामिनी

जाति उस जाति की ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखती है जो पुराने ख़ज़ानों की रक्षा कर रही है। यह कैसी सुहावनी अवस्थिति है। ऐतिहासिक घटनाओं का यह मेल मन में कैसे कैसे भाव उत्पन्न करता है।

और देशों के लोग, भारतवर्ष को अङ्गरेज़ों के धन कमाने की भूमि समझते हैं। वे हिन्दुओं के प्रति दया या दुख का भाव प्रकाशित कर सकते हैं; परन्तु उन्हें कोई भी कहीं पसन्द नहीं करता। ऐसी अवस्था में उनसे प्रेम करने या उन पर भक्ति रखने का तो विचार भी नहीं हो सकता। अंग्रेज़ी झंडे के नीचे उनका कोई गौरव नहीं क्योंकि घर के नौकरों में उनकी गणना है। एक अङ्गरेज़ कभी भी नहीं भूलता कि हिन्दू उसकी प्रजा हैं। अङ्गरेज़ी बस्तियों में आर्थिक हेतुओं के कारण वे डरावने समझे जाते हैं और कई अन्य कारणों से उन पर मुकद्दमे चलाये जाते हैं और लज्जित किया जाता है। फ्रांस देश के निवासी भारतवर्ष के विषय में कुछ अधिक जानने का कष्ट नहीं उठाते। वे भारतवर्ष को ऐसी चीज़ समझते हैं जिसे दौर्भाग्यवश अङ्गरेज़ों ने उनसे छीन लिया था; और अब भी "भारतवर्ष का छिनना" जैसा शीर्षक उनके विद्यालयों की ऐतिहासिक पाठ्य पुस्तकों में पाया जाता है। मार्सेल (फ्रांस का एक बन्दरगाह) के बोझ उठाने वालों को छोड़ कर (जिन के पास उन हिन्दुओंकी उदारता का गुणगान करने के लिये पर्याप्त कारण है जो कुक कम्पनी की अधीनता में उनके देश में से होते हुए यथा सम्भव शीघ्र ही लण्डन पहुंचने का प्रयत्न करते हैं) फ्रांस-वासी हिन्दुओं को बहुत कम देखते हैं।

हमारे अधिक देशवासियों की फ्रांसीसी भाषा से अन-भिज्ञता भारत और फ्रांस में एक और भी दीवार खड़ी कर

देती है, क्योंकि फ्रांसीसियों से हमारी दशा जानने के लिये हिन्दी सीखने की आशा रखना निरर्थक है। संस्कृत पढ़ने से जर्मनी के लोगों में हमारी प्रतिभा शक्ति पर भक्ति उत्पन्न हो गई है। मुझे एक बार यह देख कर आश्चर्य हुआ कि एक साधारण शिक्षा प्राप्त किये हुए जर्मनी-वासी ने भी "शकुन्तला" का अनुवाद पढ़ा हुआ था। किन्तु जर्मनी के लोग हिन्दुओं को प्रत्यक्ष रूप से बहुत कम देखने पाते हैं। कुछ ही नगरों में थोड़े से हिन्दु विद्यार्थी और व्यापारी रहते हैं। वहां के पढ़े लिखे लोग, निस्सन्देह, राजनैतिक कारणों से, भारतवर्ष के मामलों को गहरी दृष्टि से देखते हैं। मुझे विश्वास है कि यदि जर्मनी के लोग हमारे विषय में अधिक जान सकें तो वे अवश्य हमारे साथ स्नेह करने लगेंगे। परन्तु यहां भी भाषा भेद ही एक दूसरे को दूर रखता है। इस समय यह बड़ी आवश्यकता है कि कुछ शिक्षित भारतवासी योरप की प्रधान प्रधान भाषाओं का अनुशीलन करें जिससे उनकी यात्रा बम्बई से लंडन तक ही परिमित न रह जावे।

अमेरिका में सारी अवस्था ही बदल जाती है। अमेरिका का भारतवर्ष के साथ कोई व्यापार सम्बन्धी या राजनैतिक सम्बन्ध नहीं है। उसे हमारे यहां की रुई या बग़दाद रेलवे से कोई सम्बन्ध नहीं है; और न वह हमारे देश को महमूद से आरम्भ होने वाले लुटेरों का स्वर्गधाम या लङ्काशायर के पूंजीवालों का मक्का ही समझता है। वह सूत्र जो हमें अमेरिका के साथ बांधता है, राजनैतिक लोहे या व्यापारी सोने की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट द्रव्य का बना हुआ है।

यहां मैं यह बतलाना चाहता हूं कि अमेरिका और इङ्गलैण्ड में रहने वाले भारतवासियों के जीवन में बड़ा भेद

हैं। वे भारतवासी जो पठन, स्वास्थ्य नौकरी विषयभोग या राजनैतिक दम्भ—के लिये इङ्गलैंड में रहते हैं, हमारे समाज के सर्वोत्तम भाग नहीं हैं।

दूसरी ओर, अमरीका में रहने वाला हिन्दू समाज भारत माता के सर्वोत्तम पुत्रों से बना हुआ है। यहां "अफ़सरों" की कृपा-बूंद के प्यासे आवारागर्द राजे महाराजों या भूखे "ग्रेजुएटों" का कोई काम नहीं और न हमें यहां राजनैतिक आजीविका न ओने वाले ऐसे लोग मिलते हैं जिनकी देशभक्ति वहीं तक जाती है जहां तक उनके "पवित्र शरीर का बाल बांका न हो" या उनकी संकुचित धन की थैली आज्ञा दे।

अमरीका में रहने वाले भारतवासियों को हम चार श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं जिनमें से तीन सहानुभूति युक्त वर्णन के पात्र हैं परन्तु चौथी श्रेणी उस स्थिर छाया के समान है जो ये तीनों श्रेणियों के वर्तमान कालीन भारतरूपी पर्दे पर डाल रही है। अमरीका में वर्तमान भारतीय समाज के साधारण अवयव मिहनती, स्वामी और विद्यार्थी हैं; चौथा भाग गुप्तचरों का है परन्तु उन्हें हम असाधारण समझते हैं। बस, यही चार तरह के भारतवासी अमरीका में रहते हैं। प्रसंगवश से यह भी कह देना अच्छा होगा कि यहां "हिन्दू" नाम से सब भारतवासी लिये जाते हैं; इंडियन नाम से (जिस नाम से अङ्गरेज़ लोग हमें पुकारते हैं) अमरीका के आदिम निवासी पुकारे जाते हैं। इसलिये मैं अवशिष्ट 'इंडियन' शब्द की जगह (जो अङ्गरेज़ी में हमारे लिये गढ़ा गया है) हिन्दू शब्द का ही व्यवहार करूंगा। अमरीका के लोग भारतवर्ष की प्रत्येक चीज़ को हिन्दू के नाम से पुकारते हैं, जैसे—हिन्दू-संगीत, हिन्दू वर्णमाला, हिन्दू-राजनीति, इत्यादि।

मैं पहिले गुप्तचरों के विषय में ही लिखता हूं, ताकि उन से छुट्टी पाकर औरों के विषय में अच्छी तरह लिख सकूं। ये भ्रमण-शील टकाधर्मी कभी २ हमारी बस्तियों में मित्र के रूप में दर्शन दे जाते हैं और हमारे ऐसे रहस्यों का पता लगाना चाहते हैं जिनसे हम स्वयं भी अनभिज्ञ हैं। इन की उच्छृङ्खल कल्पना शक्ति जिस व्यक्ति को अपना शिकार चुन लेती है उसी पर, इन की कृपा आरम्भ होती है। यदि नाना श्रेणियों के लोगों को हम सौरचक्र के नियत अवयव समझें तो इन भद्र पुरुषों की उपमा पुच्छलतारों ही से दी जा सकती है। वे अनियत और कभी २ अज्ञात वृत्त में घूमते हैं, उनकी गति के नियम ढूंढ निकालना बड़ा कठिन है; वे अशुभ सूचक होते हैं उनका कलेवर साधारण लोकों की अपेक्षा बिलकुल ही भिन्न चीज़ों से बना होता है; उनका धार्मिक पर्दा इतना पतला होता है कि उस में से हर एक उन का भीतरी हाल देख सकता है। और उनका उदय खूब चर्चा और वादानुवाद का कारण होता है। इन लोगों की अलौकिक प्रतिभा स्फूर्त्ति के लिये इस देश में बहुत ही थोड़ा अवसर है क्योंकि यहां के भारतवासियों को शोरशराबे वाली हलकी राजनीति के लिये अवकाश ही नहीं मिलता और यह इनके लिये ऐसा ही आवश्यक है जैसा मछली के लिये पानी। अमरीका के हिन्दू निर्धन और क्रियात्मक हैं जिन्हें कई तरह के विघ्नों का सामना करना पड़ता है। वे लम्बी चौड़ी बातों और निस्सार गर्वोक्तियों की अपेक्षा चुपचाप, स्थिर कार्यों से अपने देश की सेवा करना चाहते हैं। इसलिए ये "दालभात में मूसलचन्द" गुप्त चर उस प्रकाश से चौंधिया जाते हैं जो यहां की हिन्दू समाज के प्रत्येक कोने को प्रकाशित कर रहा है; क्योंकि छछूंदर और चिमगादड़ की तरह ये भी अंधेरे

में ही अपना काम कर सकते हैं। अमेरिका निवासी हिन्दुओं में जैसा दृढ़ गाम्भीर्य्य स्वच्छ उत्साह, और एक रस कार्य्य लगन है उस में इन का काम कर सकना बड़ा ही कठिन है। हमारे लोग यहां अच्छी तरह समझ गये हैं कि इन के फंदों में केवल मूर्ख देशभक्त ही फंस सक्ते हैं और इस प्रणाली के विष की सब से अच्छी यही औषधि है कि अपने चारों ओर सामाजिक वायु मंडल स्वच्छ और उज्ज्वल रक्खा जावे; जिस में इन का उसी तरह दम घुटता है जिस तरह सूर्य्य के प्रकाश में प्लेग के कीड़ों की जान निकलती है। तब भी संसार के प्रत्येक कोने में रहने वाले हिन्दू जनसमुदाय समय समय पर इन के दर्शनों से कृतार्थ होते ही रहते हैं और विशेषता यह है कि ऐसे समयों में ये सदा भारतीय-स्वाधीनता के जोशीले पक्षपाती और गर्म से गर्म नैतिकदल के अनुयायी होने का दम भरते हैं। लोगों ने मुझे बतलाया कि अभी हाल में इन का एक भाई वेद यहां आया था जो अपने आप को सन्यासी कहता था। परन्तु अनुभवी लोग उस के असली रूप को झट पट ताड़ गये क्योंकि इन का अपने असली रूप को छिपा सकना उतना ही कठिन है जितना एक सड़तेहुए शव का अपनी सड़ांद को। यहां के नौजवान खुले और स्पष्ट वक्ता हैं और इसी कारण गुप्तचरों को यहां कृतकृत्यता प्राप्त नहीं होती। यहां उनके ढूंढ़ने के लिये कोई रहस्य ही नहीं है। यहां हमें उनके साथ चतुरता करने की ज़रूरत ही नहीं है। क्योंकि हमारे कथनों की प्रत्यक्ष निर्व्याजता ही उन्हें मूढ़ और व्याकुल कर देती है। यदि प्रत्येक गुप्तचर यहां के हिन्दुओं के वार्तालाप का ठीक २ सारांश 'इंडिया आफ़िस' में भेज दे तो उसके पास एकता, आपान से सीखने योग्य बातें, कलाकौशल की आवश्यकता, अमरीकन लोगों की

महानुभावता, प्रजातन्त्रता के लाभ, हाथ के काम का आदर रूज़वेल्ट की नीचता, भारतवासियों को उठाने के लिये शिक्षा की आवश्यकता आदि विषयों पर अच्छे उपदेश इकट्ठे हो जायेंगे। यदि समाचार देने वाले सिपाही विश्वासपात्र हों तो उनकी "रिपोर्टों" में यहां के हिन्दुओं के ऐसे ही कथन मिलेंगे जो हलचल मचाने वाले नहीं कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त यहां के हिन्दू कार्य्य में इतने व्यग्र हैं कि उन्हें असली देशोपकारी काम करने के लिये बहुत थोड़ा समय मिलता है। उनके हृदय में केवल इच्छाएं और आशाएं ही लहरें मारती हैं। जो विद्यार्थी आठ घंटे विद्यालयों में पढ़ कर तीन चार घंटे मज़दूरी भी करते हैं, उनके पास और कामों के लिये क्या शक्ति बच सकती है? विद्या प्राप्ति और आचार सुधार उनके मुख्य उद्देश्य हैं, और उचित भी यही है। हम उनके विचारों और उद्देश्यों के फल चखने के लिये तब तक प्रतीक्षा कर सकते हैं जब तक वे अपने पूरे स्वामी न बन लें या अपने देश में, शिक्षा सम्बन्धी या कलाकौशल-सम्बन्धी किसी विभाग में कार्य्य न करने लग जावें।

संस्कृत के कवि प्रत्यङ्ग वर्णन करते समय पांव के वर्णन से आरम्भ करते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुए मैंने भी पहिले गुप्तचरों के विषय में ही लिखना उचित समझा है, और इनके विषय में जितना लिखना उचित समझा है, और इनके विषय में जितना लिखा गया है वह बहुत पर्याप्त है। संस्कृत कवियों के क्रमिकोन्नति मार्ग का अनुसरण करते हुए अब मैं सिक्खों को लेता हूं जिनकी मेहनत से अमरीकन लोग आज कल इतने ही अभिज्ञ हैं जितने पुराने समय के अफ़ग़ान उनके भुज बल से परिचित थे। वे हज़ारों की

संख्या में केलिफ़ोर्निया, ओरेगान और वाशिंगटन की रियासतों में फैले हुए हैं। वे धीर और अप्रमत्त मेहनती हैं, परन्तु उनमें से कुछ कभी २ मद्य पीकर उन्मत्त हो जाते हैं जैसा कि हाल ही में एक छोटे से नगर में हुआ था जहां से हुल्लड़ मचाने के कारण वे निकाले गये थे। वे अपनी पगड़ी और धर्म को खूब बचाकर रखते हैं। वे खेतों में अच्छा धन कमाते हैं और जितना हो सके मितव्यय से निर्वाह करते हैं। वे अच्छी अंग्रेज़ी बोलना नहीं सीखते क्योंकि वे अपने आप को इस देश में अस्थिर पथिक समझते हैं और यहां रहते हुए भी सदा प्यारे पुराने गांव और भारतवर्ष के उज्ज्वल प्रकाश को याद किया करते हैं। अमरीकन खेतिहर और फल उपजाने वाले उनकी बहुत ढूंढ में रहते हैं। क्योंकि उनकी आदतें नियमित और सरल होती हैं। देश के इस भाग में विदेशी मेहनतियों की बहुत मांग रहती है। इसके विरुद्ध कुछ ही जोशीले देशभक्त अमरीकनों ने शोर मचा रक्खा है जिनकी उत्तेजना के कारण "सैन फ्रैंसिस्को" और कुछ बड़े नगरों में घूमने वाले आलसी भिखमंगे हैं। एक अमरीकन खेतिहर ने जो कैलिफोरनिया में फलदार वृक्षों के कई एकड़ों का स्वामी है एक बार मुझसे कहा,—देखिये, वस्तुतः मामला यह है। मैंने पहिले अमरीकन लोगों को काम दिया क्योंकि विदेशियों की अपेक्षा मैं उन्हें पसन्द करता था। आप भी ऐसा ही करेंगे। यह स्वाभाविक बात है परन्तु ये लोग बड़े निकम्मे होते हैं। वे एक सप्ताह तक काम करते हैं, उसके पीछे कोई आ कर कहता है कि मेरे पास कमीज़ नहीं है, कोई कहता है कि उसे ओढ़न चाहिये, और इस तरह अपनी मज़दूरी में सात आठ रुपये शनिवार को ले जाते हैं। वे सब शराब पर खर्च देते हैं। उनमें कुछसे सोमवार को आते ही नहीं या

किसी और काम पर चले जाते हैं और उधर मेरे हज़ारों रुपये के फल सड़ने और गलने लगते हैं। फिर मुझे आप के लोगों को, चीनियों या जापानियों को काम देना पड़ता है जिनको मेहनताना कम देना पड़ता है और काम स्थिरता से होता है।" प्रायः अमरीकन कॅनिहर सड़क पर घूमते हुए सिक्ख को आप बुला कर काम देता है। इस तरह हमारे परिमित आहार विहार और कठिन धार्मिक नियम विदेश में हमारे भाइयों के लिये बड़े सफल सिद्ध होते हैं जब कि अपने देश में उन्हें काम करने का कोई अवसर नहीं मिलता। यह आशा ही न करनी चाहिये कि सिक्खों का यहां रहना सब के लिये समान सन्तोषदायक होगा। वे सीधे सादे पूर्वीय किसान हैं जो अपने आप को झट पट उस आचार और व्यवहार के अनुकूल नहीं बना सकते जो यहां के संकीर्ण सामाजिक जीवन में बर्ते जाते हैं। यहां प्रत्येक मनुष्य से जो आशाएं की जाती हैं, उन्हें वे पूरा नहीं कर सकते। यह कहा जाता है कि सिक्ख बड़े मैले रहते हैं, वे अमरीकन साथियों से दूर रहते हैं, और कई बार छोटी छोटी त्रुटियों के कारण उन्हें स्वास्थ्य-रक्षक अधिकारियों के हाथ बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। मैं ऐसी स्थिति में नहीं हूं, कि मैं इन शिकायतों की न्यायता या अन्यायता परख सकूं। यदि इनमें कुछ सत्य का अंश हो भी तो यही सिद्ध होगा कि सिक्ख भूल करने वाले अल्पज्ञ जीव हैं। उनके दैनिक जीवनों को हमें बड़े ऊंचे आदर्श से न जांचना चाहिये। और स्वदेश वासियों के लिये इस प्रकार के अनुदार और हलके विचार प्रकट करना और भी अनुचित है जैसा कि मैंने कइयों को प्रकट करते सुना है। इसके विरुद्ध, हमें इन अनपढ़ ग्रामीणों के उत्साह और साहस की प्रशंसा करनी चाहिये। यहां आकर उनमें बड़ा

शीघ्र देशभक्ति का भाव उदित हो उठता है जो समय समय पर अपने भाइयों की सेवा करने, सामाजिक कार्यों में अधिक अनुराग रखने, धार्मिक वृत्तियों के सुचेत हो जाने, अपने देश में लौट कर भी स्वाधीन आजीविका को पसन्द करने और मिल कर काम करने में बीसियों तरह प्रकाशित होता है। यह शोक है कि उनकी अविद्या और सरलता के कारण कई लोग उन्हें धोखे का शिकार बनाते हैं। परन्तु हमारे इस भूमण्डल में यह बात अनिवार्य्य है। मेरी सम्मति में सिक्खों को यहां आने से धन सम्बन्धी और आचार-सम्बन्धी दोनों तरह का लाभ है। उसमें बड़ा परिवर्तन आ जाता है। उसकी आर्थिक और धार्मिक निर्धनता दूर हो जाती है। वह अपना स्वयं आदर करना सीखता है। वह देशी सेना की रिसालदारी को, लौकिक महत्व का सर्वोच्च शिखर नहीं समझता। वह यह भी देख लेता है कि 'ग्रेटब्रिटेन' के सिवाय संसार में कोई और भी शक्ति है। चुपचाप ही उसके भीतर एक तरह की क्रांति हो जाती है। थोड़े ही दिनों में वह डरपोक,, मैला और आलसी किसान नहीं रहता जो कुछ दिन पहिले "सियेटल" या "सैन फ्रैंसिस्को" में मज़दूरी के लिये उतरा था। कई स्वार्थी लोग इस आर्थिक और धार्मिक उन्नति को बड़ी चिन्ता और शङ्कायुक्त दृष्टि से देख रहे हैं। परन्तु जब तक सिक्ख लोग बाहर जाते रहेंगे तब तक यह उन्नति रुक नहीं सकती। नई दशाओं में आकर इस परिवर्तन का होना स्वाभाविक ही है। जब एक बार छूट कर बारासिंगा जंगल में विचरण करने लगा तो फिर वह डरपोक और मुर्दार नहीं रह सका? क्या "सर्कस" से बाहर निकल कर भी केसरी दुम दबा कर बैठ सकता है? अमरीकन वायु मंडल में श्वास लेता हुआ कोई

भी मनुष्य ऊंचे आचार विचार में संचरण किये बिना नहीं रह सकता। इस सर्वोत्तम प्रजातन्त्र राज्य के लहराते हुए झंडे के नीचे भीरुता, निराशा, दासता, और उदासीनता उसी तरह नष्ट हो जाती हैं जिस तरह आग में सोने की मिलावट भस्मसात् हो जाती है। यहां की पताका, सदाचार के लिये अमृतधारा और धर्म के लिये संजीवनी बूटी है जो सैकड़ों उपदेशों और पुराना समय लाने वालों की सहस्रों सभाओं से कहीं बढ़ कर शक्ति शालिनी है। यह आशा और शुभ कामना की दूती है जो मनुष्य जाति के निकृष्टतम भाग को भी अपने आभूषणों में परिवर्तित कर लेती है और बियाबान मरु भूमियों को फलते फूलते उद्यान बना देती है। हम उस झंडे के सामने सिर झुकाते हैं जो एकता, स्वाधीनता, सहनशीलता और वैयक्तिक उन्नति का पक्ष पाती है और जिस के साथ जातीय आक्रमण या भूत कालीन दुःखों का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन का हृदय शिथिल और उत्साहहीन हो रहा है उन्हें इस नैतिक और धार्मिक "सेनिटेरियम" (स्वास्थ्यसुधारकस्थान) में आना चाहिये जहां सामाजिक सूर्य्य सदा अपना प्रकाश फैलाता है और जहां दूसरे जल वायु में क्षीण प्राणी सुंदर स्वास्थ्य सम्पन्न बनाये जाते हैं। महान् परिवर्तनकारी रासायनिक, वर्तमान युग का आश्चर्य्य-जनक जादूगर, अधिक भारत्ती भूमि माता के उपेक्षित और अरक्षित पुत्रों का आश्रय, अत्याचार से पीड़ित लोगों को स्वाधीनता देने वाला यहां का झंडा दूर दूर से पुराने संसार के जातिबहिष्कृत, सम्पत्तिच्युत और पीड़ित पुत्र पुत्रियों को बुलाता है और कहता है:-"जब तक आकाश मण्डल और मेरे तहों में तारे चमक रहे हैं तब तक प्रत्येक जाति के लोग मेरी रक्षा में शान्ति और सम्पत्ति प्राप्त

करने के अधिकारी हैं। दुःखी और विह्वल लोगो ! मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा।"

इस भांडे के नीचे रहने का इस से अधिक लाभ विद्यार्थी लोग उठाते हैं। अमरीका के हिन्दू विद्यार्थी मध्यम श्रेणी के लोगों में से आते हैं जो, यद्यपि निर्धन हैं तथापि, बुद्धि और क्रिया शक्ति से सम्पन्न हैं। ये कला-कौशल की शिक्षा प्राप्त करने में लगे हुए हैं। और प्रायः अपने निर्वाह के लिये धन भी स्वयं कमाते हैं। विद्यालयों में विद्याध्ययन के साथ साथ, हाथ के काम से अपना निर्वाह करने का प्रभाव विद्यार्थियों पर बड़ा अच्छा पड़ता है। इससे आत्मावलम्ब और आत्मविश्वास का भाव उत्पन्न होता है। यह विद्यार्थियों को कई तरह के प्रलोभनों से बचा सकता है। इससे परस्पर भ्रातृभाव और सहानुभूति बढ़ती है। इससे अभिमान और अकेले रहने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। यह सामाजिक जीवन के कठिन और उपयोगी मार्ग के लिये लोगों को तय्यार कर देता है।

इस में सन्देह नहीं कि कई बार निर्धनता आचार को गिराने वाली और कलह बढ़ाने वाली भी होती है। निर्धनता के कारण लोग बुरे साधनों से धन कमाने में प्रवृत्त होते हैं। इसी के प्रभाव से कई नौजवान यहां योग के अध्यापक या फलित ज्योतिषी बन बैठते हैं और इस तरह धोखे और छल से काम निकालते हैं। परन्तु यदि सारी बातों पर ध्यान दिया जावे तो यह प्रकार लाभदायक और आलस्य से बचाने वाला ही प्रतीत होता है। यह प्रकार, नौजवानों के अपरिपक्व जोश को रोके रहता है, जिस जोश का दुरुपयोग, कुछ अदूरदर्शी देशभक्त देश की भलाई के लिये लेना चाहते हैं। इस से नौजवानों को समाज के धीर और विचार शील अवयव बनने

और सामाजिक तथा नैतिक झगड़ों के प्रवाह से बच निकलने का अवसर मिलता है, जिस में कई नौजवान पड़ कर नष्ट हो गये हैं। इससे उन्हें जीवन का वास्तविक रूप और कठिनाइयें देखने को मिल जाती है; और फिर उन्हें वह जोश झट पट उत्तेजित नहीं कर सकता जो फूस में लगी हुई आग की तरह उठते ही बुझ जाता है। इस तरह की अवस्थाओं में रहने से विद्यार्थियों को अमूल्य लाभ प्राप्त होते हैं। रियासती विश्व-विद्यालयों में शिक्षा बड़ी सस्ती है और योग्य व्यक्तियों के लिये काम का तोड़ा नहीं है। कई विद्यार्थी किसी धनी परिवार में तीन से पांच घंटे तक घरेलू कामों में सहायता देकर अपने रहने और भोजन का खर्च निकाल लेते हैं क्योंकि यहां नौकर इतने दुर्लभ हैं कि बहुत धनी ही एक आध "काला" नौकर रखने का व्यय सहार सकते हैं। मैंने उच्च सामाजिक स्थिति रखने वाली महिलाओं को भी अपनी रोटी पकाते और घर साफ़ करते देखा है। निर्धन, परिश्रमी, और बुद्धि-मान विद्यार्थियों के लिये अमरीका बड़ा लाभदायक देश है। यदि कोई सरल और कठोर जीवन व्यतीत कर सकता है, तो अपने घर से रुपया न आने पर भी वह यहां की "डिग्री" ले सकता है। परन्तु लौटने के किराये का पूरा प्रबन्ध कर छोड़ना चाहिये। विशेष आवश्यकता या रोगी होने पर भारतवर्ष में उसे कोई अपना आश्रय भी ढूंढ रखना चाहिये। विद्यार्थियों को यहां जो काम मिलता है उन से खाना पीना ही हो सकता है, उसमें कुछ बचाना कठिन है। कई विद्यार्थी, विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने पर निराश्रय हो जाते हैं और आश्चर्य से देखते हैं कि उनकी "डिग्री" ६०० रुपये का टिकट ले देने में समर्थ नहीं है। कई लोग झूंठे प्रकारों से रुपया इकट्ठा करने लगते हैं। अतएव

ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि भविष्यत् में ऐसी घटनायें न हो सकें क्योंकि असज्जनता के व्यवहार से अमरीकन लोगों में हमारी प्रतिष्ठा कम होती है और भविष्यत् में कठिनाइयों के बढ़ने की सम्भावना है। जिन निर्धन विद्यार्थी के पास लौटने का किराया मिल सक्ता है उसे यहां आने से न डरना चाहिये। परन्तु जो शक्ति या भाग्य पर ही निर्भर रहते हैं, उन्हें यहां न आना चाहिये क्योंकि इन गुणों से दैनिक रोटी कमाई जा सक्ती है, किन्तु इन से परिवर्तन में बड़ी धन की राशि मिलना कठिन है। आलसी और दरिद्री विद्यार्थी दूसरों को जोंक की तरह लग जाते हैं परन्तु इससे परस्पर अविश्वास और आपस का झगड़ा बढ़ता है. क्योंकि धन में धन से बढ़ कर द्वेष फैलाने वाली वस्तु कोई भी नहीं है।

हमारे विद्यार्थी मानसिक योग्यता का बहुत अच्छा परिचय देते हैं; वे अपने परिश्रम और योग्यता से परीक्षा में बड़े अच्छे रहते हैं और अपने अध्यापकों से प्रशंसा प्राप्त करते हैं। बहुत ही कम अनुत्तीर्ण होते हैं। यहां धनी और आलसी लोग नहीं आते। इसी लिये पढ़ाई लिखाई में ये बहुत ऊंचा दर्जा प्राप्त करते हैं।

अब मैं अन्तिम श्रेणी की ओर आता हूं जिनके विषय में मुझे कुछ कहना है और वे सन्यासी हैं। मैं पहले ही कह देना चाहता हूं कि स्वामी और स्वामियों में भेद है। सबही चमकीली चीजें सोना नहीं होतीं। यहां के कुछ सन्यासी बड़े प्रतारक हैं। जो धर्म की आड़ में धनसंग्रह और इससे भी बढ़ कर पाप करते हैं। यहां की सभ्यता के निकृष्ट भागों ने उन्हें अपना दास बना लिया है। वे संसार की चिन्ता से रहित, बड़े सुख और आराम से अपना जीवन बिताते हैं।

वे प्रौढ़ स्त्रियों से खूब रुपया ठगते हैं। यहां के कुछ स्वामी इस तरह के अवश्य हैं। ये हिन्दू समाज के कलङ्क हैं। वे अपनी आत्मिक-विद्या फैलाने का काम खुब त्याग करते हैं और उन्हें अधिक कृतकृत्यता नहीं होती।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित "वेदान्त मिशन" के साथ सम्बन्ध रखने वाले स्वामी बहुत सच्चे और गम्भीर हैं और अमरीकन लोगों का बड़ा भला कर रहे हैं। सम्भव है उन में से एक या दो आदर्श से नीचे हों। और मैंने एक के विषय में कई शिकायतें सुनी भी हैं। परन्तु बर्तनों में नवें सब जगह ही होते हैं। मानवीय स्वाभाविक दुर्बलता और रहन सहन के पश्चिमीय तरीकों को ख्याल में रख कर देखा जावे तो मानना पड़ेगा कि स्वामियों का जीवन बड़ी उच्च श्रेणी का है और वे उस कृतकृत्यता के योग्य हैं जो उन्हें प्राप्त हुई है। जब स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ के शिकागो धर्म सम्मेलन में व्याख्यान दिया था और श्रोताओं का "अमरीका के भाइयो, और बहिनो" कह कर सम्बोधन करने में खूब तालियें प्राप्त की थीं तब, उस के स्वप्न में भी न था कि उसके पीछे कार्य्य-परायण उपदेशक उसका काम पूरा करेंगे। उस के उपदेशों का शुभ प्रभाव चारों ओर देखने में आता है। अमरीका के लोग हिन्दुओं से धर्म सीखने के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं। पढ़े लिखे लोग सदा समझते हैं कि प्रत्येक हिन्दू योगी है या उसे होना चाहिये। हिन्दू-विचारों के लिये बड़ा अनुराग उत्पन्न हो रहा है। कई सच्चे जिज्ञासु अपने आदर्श की प्यास को हिन्दुओं के दर्शन स्रोत में बुझाना चाहते हैं। बोस्टन की एक अध्यात्मविद्या सम्बन्धिनी सभा में घुसते ही मुझ से एक महिला ने पूछा कि क्या मैं "मानसिक-चिकित्सा" जानता हूं। कई अमरीकन उपदेशक भी

"कर्म" पर उपदेश देते हैं यद्यपि वे हमारे विचारों को बड़ी अपूर्णता से समझते हैं। यहां "थ्यासोफ़ी" की भी प्रधानता है और श्रीमती कैथराइन टिंगल की अधीनता में, केलिफ़ार्निया के पॉइंटलोमा में नियमित राजयोग कालेज है। कई धनवती और शिक्षित महिलायें हिन्दूधर्म में बड़ा अनुराग प्रकाशित करती हैं और बैठकों की सजावट के लिये रक्खी हुई बुद्ध की मूर्त्तियों के सामने धूपदीप जलाती हैं। कई अमरीकन महिलाओं ने हिन्दू नाम भी रख लिये हैं और वे वेदान्त का प्रचार करती हैं। उन में से मुखिया एक पढ़ी लिखी महिला, भगिनी "देव-माता" है जो भारतवर्ष में दो वर्ष तक वेदान्त पढ़ कर अभी लौटी है और अब इस देश में वेदान्त का प्रचार करेगी। हमारे विचारों से उस की अभिज्ञता बड़ी प्रशंसा योग्य है और उस से मिल कर और "प्राणायाम" तथा 'सार्वभौम धर्म के रूप में वेदान्त' पर व्याख्यान सुन कर मैंने बड़ा आनन्द प्राप्त किया। स्वामी लोगों के परिश्रम से उच्चश्रेणी के लोगों में हिन्दू विचार साधारणतः फैल गये हैं और हमारी 'दार्शनिकों की जाति' होने की विख्याति फैल गई है। हिन्दू-जातीयता, इन लोगों में मिलने जुलने का एक प्रमाण पत्र हो गया है, और यदि इस के साथ इस व्यक्ति में कोई असाधारणता हो तब तो निस्सन्देह वह प्रीति, भक्ति और नम्रता के भाव में परिणत हो जाती है। मेरे एक मित्र ने पैदल घूमते हुए, एरिकज़ोना और दक्षिण मैक्सिको के दूर भागों में भारतीय धर्म और राजनीति पर व्याख्यान दिये हैं। लोग उनका व्याख्यान बड़ी रूची से सुनते थे और उनकी प्रतिष्ठा करते थे। अमरीकनों की बुद्धि बड़ी जागृत और प्रश्नशीला होती है। वे सब के विषय में सब कुछ जानना चाहते हैं। वे भारतवर्ष के रहस्यों और अद्भुत

बातों की भूमि; सांप, ज्योतिषी, योगी, महात्मा, हाथियों का निवास स्थान समझते हैं। इसीलिये यहां का नाम उन्हें मोह लेता है। वेदान्ती स्वामी उन की इस उत्सुकता को पूरा कर देते हैं, जिन्हों ने कई नगरों में अपने चारों ओर भक्त शिष्यों के छोटे समूह इकट्ठे कर लिये हैं। बोस्टन, न्यूयार्क वाशिंग्टन, पिट्सबर्ग, सेनफ्रैंसिस्को, और लोसएंजल्स में वेदान्त शिक्षा के केन्द्र हैं। सेनफ्रैंसिस्को की सभा विशेष वर्णन के योग्य है क्योंकि इस के पास एक अपना मन्दिर भी है, और वहां के प्रबन्धकर्त्ता भी अपनी पुस्तिका में यह लिखने का सदा ध्यान रखते हैं कि "यहां केवल एक यही हिन्दू मन्दिर है"। इस सभा की कृतकृत्यता का कारण स्वामी त्रिगुणातीत और स्वामी प्रकाशानन्द की कार्य्यशक्ति है। इन स्वामियों में निस्सन्देह सच्चा धार्मिक जोश है। मन्दिर की बनावट बहुत सुन्दर है। अढ़ाई वर्ष की विदेश यात्रा के पीछे इस मन्दिर को देख कर मुझे घर याद आ गया और मैंने सोचा कि आगे से, केवल एक यही हिन्दू-मन्दिर है जिसे मैं देख सकूंगा। हरद्वार और हृषीकेश के दृश्य मेरी आंखों के सामने घूमने लगे और कल्पना मुझे उन शान्ति और समाधि के निवासस्थानों में उड़ा ले गई जिन्हें मैं सदा के लिये "नमस्ते" कह चुका हूं। मैं उन पुण्यस्थलों के पवित्र पवन के लिये अभी भी उत्कण्ठित हूं जहां के शान्त कोनों में विचरता हुआ एक एक श्वास समाधिकारी, चिन्ताहारी और आत्मोपकारी है।

और मैं उसी तरह का एक स्थान पश्चिम में ढूंढने का यत्न कर रहा हूं जहां पूरी आत्मिक उन्नति कर सकूं, जो ऐसी गर्म और सम जलवायु में हो सक्ती है जैसी हमारी पुण्य

भूमि को मिली है। रत्नमयी पेरिस नगरी के सुहावने मार्गों में, योरप के नकली हिमालय एल्पस पर्वत की चट्टानों पर, सूर्योद्भासित सुन्दर इटली के मैदानों में, "नव इग्लैंड" के किनारों पर टकराने वाले हिमाच्छादित अटलांटिक महासागर के तीर पर, मेरा मन हिन्दू-धर्म के झूलन की ओर दौड़ता है जहां कपिल से लेकर रामतीर्थ तक हिन्दू-मुनि आत्म बोध और तत्वज्ञान प्राप्ति के लिये जा रहे हैं। उसे हम भारतवर्ष के धर्म परायण महात्माओं की शिक्षाभूमि कह सकते हैं। परन्तु संसार के इस पश्चिमी भाग में शोर, हिम, लोकाचार और रूढ़ि ही दीख पड़ती है। यहां संसार हमारे साथ सदा चिपटा रहता है। सम्भव है मेरा चिरवाञ्छित शान्ति धाम मुझे दक्षिण कैलिफोर्निया में मिल सके, जहां के भारतवर्ष जैसे जलवायु में अप्रतिहत समाधि और सच्चे संन्यास का अभ्यास हो सका है।

इस वैयक्तिक विषयान्तर-गमन से घर में रहने वाले पाठक उन भावों की गहराई का अनुमान कर सकते हैं जो, प्रवास में घर सम्बन्धी किसी भी चीज के देखने से हमारे हृदय में उदित हो उठते हैं। एक छोटा हिन्दू मन्दिर क्या चीज़ है ? भारतवर्ष में ऐसे सैकड़ों विद्यमान हैं। हां, प्यारे पाठक! तुम्हारे लिये यह कुछ नहीं। तुम सदा भारतीय वसन्त का आनन्द लेते हो, तुम कोकिल का गान और कमल विकाश देखते हो पर उन पर एक क्षण भर भी विचार नहीं करते। तुम्हारे लिये एक कमल केवल कमल है, परन्तु हमारे लिये यह इस से भी बढ़ कर है। इस की एक एक पंखड़ी हमें उन चीज़ों का स्मरण कराती है जिन्हें हम अपने देश में छोड़ आये हैं, और जब तक कोई असम्भव बात ही न हो जाय तब तक हमें देखने का अवसर न मिलेगा। इसलिये

सेन फ्रैंसिस्को के मन्दिर की प्रशंसा अत्युक्ति भरी न समझनी चाहिये। उस दिन मैंने एक अमरीकन महिला से कहा–"मैं ने तब तक भारतवर्ष का मूल्य नहीं समझा था जब तक सदा के लिये वहां से विदा नहीं हुआ था।" और तब मैंने उन अद्वितीय अवसरों का वर्णन किया जो भारत की जल-वायु और लोगों के आचार व्यवहारों के कारण हमें धार्मिकोन्नति के लिये पर्याप्त हैं।

मन्दिर के अन्दर घुसते ही मेरे हृदय की लहरें वेदान्त के प्रभाव से शान्त होने लग गईं क्योंकि अपने मनोविकारों को रोकने की शिक्षा के अतिरिक्त और वेदान्त क्या सिखाता है? अमरीकन शिष्यों द्वारा बनाये हुए, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के चित्रों से मन्दिर सुशोभित था। इस के अध्यक्ष स्वामी प्रत्येक आदित्यवार को तीन व्याख्यान देते हैं, गीता की पाठशाला चलाते हैं, योगाभ्यास की शिक्षा देते हैं और एक छोटी सी "स्वाधीनता की वाणी" नामक पत्रिका निकालते हैं। उन के कई शिष्य संस्कृत पढ़ते हैं और गीता का मूल संस्कृत में पाठ करते हैं। कुछ जोशीले योरप निवासी उपदेशक बनने के लिये ब्रह्मचारी बन कर रहते हैं। स्वामी त्रिगुणातीत ने यहां अच्छी सामाजिक स्थिति प्राप्त कर लीवीखती है और इसीसे १९१५ में सेन फ्रैंसिस्को में होने वाली पनामा प्रदर्शनी के भारतीय विभाग के वे अधिष्ठाता नियत हुए हैं। स्वामियों ने, कैलिफोर्निया में शान्ति आश्रम स्थापित कर के अपनी विशेष आध्यात्मिक प्रवृत्ति का परिचय दिया है जहां उन के शिष्य समाधि और आध्यात्मिक शिक्षा के लिये, प्रतिवर्ष, एक मास तक रहते हैं। भारतवर्ष में ऐसी बात का चाहे हम पर कुछ प्रभाव न पड़े। परन्तु हम अशान्त

और कोलाहलकारी अमरीकन लोगों को नहीं जानते जो सदा किसी न किसी नई बात की चाह में रहते हैं। उन में ज़रा भी अन्तर्ध्यान नहीं है। वे अन्तर्ध्यान से उतना ही विरोध रखते हैं जितना हत्या से। उन्हें मानसिक "समत्व" सिखाने के लिये साधन करवाने पड़ते हैं। किसी अमरीकन को ध्यान के लिये पर्वत में भेज सकने की अपेक्षा सिंह को पालतू बनाना या वायु को बांधना सुलभ है। वह नहीं समझ सका कि सच्चे जीवन के तिरोहित रत्न सभा, मंडी, नाटकघर और गिर्जों से बहुत दूर पड़े हैं। शान्ति आश्रम, स्वामियोंके अव्यर्थ प्रचार का ज्वलन्त प्रमाण है। इस में कोई सन्देह नहीं कि अमरीकन लोग यहां हिन्दुओं से बड़ा लाभ उठाते हैं।

यह वेदान्त प्रचार का उत्कृष्ट फल है कि ये व्याकुल, हलके और विषय-दास अमरीकन भी हिन्दू-धर्म शास्त्रोंके अनुसार शान्ति आश्रम में अपना जीवन बिताने का प्रयत्न करते हैं। मेरी इच्छा है कि यह फले फूले।

और भी कई ऐसी बातें हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि ये स्वामी अपना प्रचार बड़ी गम्भीरता से करते हैं और इनके शिष्य उन "तमाशबीनों" में से नहीं हैं जो अपना धर्म उसी तरह बदल लेते हैं जिस तरह पैरिस की स्त्रियें अपना "फैशन"। दो अमरीकन स्त्री पुरुषों ने हिन्दू मंदिर में अपना विवाह करवाया है। धर्म द्वारा सामाजिक जीवन के नियमित होनेसे पता लगता है कि नये मत की नींव आवेश और दूरदर्शिता के साथ रक्खी जा रही है। इस तरह वेदान्त केवल एक दार्शनिक मत होनेके स्थान में जीता जागता धर्म बन जायगा। एक और स्मरणीय घटना रामकृष्ण परमहंस का बीस मार्चको जीवनोत्सव था जब दिनभर श्रोताओंने

व्रत रक्खा और वे १५ घंटे तक एक स्थिति में खड़े रहे। सभा के धन संग्रह की अपेक्षा यह कार्य्य सभासदों की भक्ति और स्नेह का अधिक निश्चायक है। ये लोग आदित्यवारके दिन प्रातःकाल अपने पेटको खूब भर कर गिरजे जाते हैं जिससे उपदेश सुनते समय धार्मिक भावोंके घुसनेके सब द्वार बंद हो जावें। ये स्वामियों की बुद्धिमता और आत्मिक शक्ति का बड़ा भारी प्रमाण है कि उन्होंने इन अधिक भोजी स्वार्थी अमरीकनों में से थोड़ों को आत्मसंयम और तप का मूल्य सिखला दिया है जिन का अभ्यास प्रत्येक हिन्दू करता है। अमरीकन लोगोंको १५ घंटे तक व्रत रखने और एक स्थितिमें बैठने के लिये उद्यत कर सकना जादू से कुछ कम आश्चर्य्यजनक नहीं है।

शायद किसी की भूल हो इसलिए मैं कह देना चाहता हूं कि मैं स्वयं वेदान्ती नहीं हूं। मैं अध्यात्म विद्याको, मूढ़ झूंठा और भ्रममूलक समझता हूं। परन्तु मैं उन लोगों के कामको श्रद्धासे देख सक्ता हूं जो मनुष्य जीवनमें आदर्श अध्यात्मिक साधनोंका प्रवेश कराना चाहते हैं चाहे वे किसी भी मतके पक्षपाती क्यों न हों। मैं इसलिए भी वेदान्त प्रचार की कृतकृत्यतामें अनुराग रखता हूं क्योंकि यह उस स्वार्थ त्याग और सांसारिक भावों का प्रतिनिधि है जो अब भारत में परिवर्तन ला रहे हैं। इनका काम उस पुनरुज्जीवन का एक भाग है जो हिन्दू समाज में नया जीवन फूंक रहा है।

कुछ समालोचक पूछ सकते हैं कि जब भारत में इनके लिये इतना काम है तो ये अमरीका में क्यों आते हैं। यही आक्षेप ईसाई पादरियों पर किया जाता है जो अपने नगरोंके दुराचारी और अज्ञानावृत लोगोंको छोड़ कर भारतवर्ष और

चीन में ईसाई बनाने आते हैं। इस प्रकार के आक्षेप दिखाते हैं कि आक्षेपकों को, मनुष्यके हृदय में कार्य्य करने वाली शक्तियों का पूरा ज्ञान नहीं है। वायु अपनी इच्छानुसार बहती है और कोई नहीं बता सकता कि यह कहां से आती है और कहां जाती है। एक तरह का आदर्श एक व्यक्तिको उच्च दशामें पहुंचा देता है परन्तु दूसरे पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। प्रत्येकको अपना आदर्श कार्य्य में परिणत करना चाहिये। यह कोई आवश्यक नहीं कि सब मेरे ही आदर्श को मानने लगें। आत्मिक शक्ति सहस्रों आकारोंमें प्रकट होती है। हम में से प्रत्येक की एक ही तरह की शक्ति और उद्देश्य नहीं हैं। इस तरह तुम गुलाबको चंबेली न होनेका दोष दे सके हो और कोयल की बुलबुल न होनेसे निन्दा कर सकते हो। कला, साहित्य, विज्ञान, राजनीति, युद्ध और खोज इत्यादि भिन्न २ विषय हैं, इन में से कोई एक से स्नेह करता है और दूसरा दूसरे विषय से। हमें अनुदार और संकुचित विचार न रखने चाहिये। जैसे एक स्त्री अपने एक पति को चुन लेती है और फिर अपने व्रत पर पक्की रहती है इसी तरह हम में से प्रत्येक को आदर्श मार्ग पकड़ लेना चाहिये और हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जब किसी जाति की गाढ़ निद्रा टूटने से उसमें शक्तियें प्रादुर्भूत होती हैं तब वे कई तरह के कार्य्य करना और कई उद्देश्यों तक पहुंचना चाहती हैं। शक्ति एक ही मार्ग में बन्द नहीं रह सक्ती किन्तु वह भिन्न २ पथ पकड़ती है। जिस भाव ने कोलम्बस को अमरीका भेजा उसी ने लूथर को "डायट आव वर्म्स" भेजा। योरुप के पुनरुज्जीवन के समय गैलीलियो, दूसरे समय शेक्सपीयर, नौक्स बेकन, काल्विन आदि सब ने एक ही स्रोत से शक्ति प्राप्तकी थी। इसी तरह

हमारे में से वे, जो समझते हैं कि जीवन सुख प्राप्ति के लिये नहीं किन्तु किसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये है, एक ही शक्ति द्वारा प्रेरित हो रहे हैं। यह एक साधारण मत है जिस पर केशव और दयानन्द, महेन्द्र लाल सरकार और आनन्दी बाई जोशी, बंकिम और रवीन्द्र, अरविन्द घोष और तिलक, जे. सी. बोस, विवेकानन्द, सयाजी राव गायकवाड़, मुंशीराम, लाजपतराय और परमानन्द चलते हैं। और ये ही सब नव भारत के नेता हैं जिन्होंने कला, विज्ञान, राजनीति या धर्म में विशेषता प्राप्त की है। अतएव अपने आदर्श की ओर न आने के कारण निन्दा की अपेक्षा प्रत्येक को दूसरों की कृतकृत्यता पर प्रसन्नता प्रकट करनी चाहिये। यदि हम यह बात ध्यान में रक्खें तो हमें पता लग जायगा कि प्रत्येक वह हिन्दू प्रशंसा का पात्र है जिसने लोगों की भलाई के लिये कुछ काम किया है। इसी भाव से प्रेरित हो कर हमें उन स्वामियों की प्रशंसा करनी चाहिये जो हिन्दूधर्म को "आक्रमण कारी" बना रहे हैं क्योंकि यह उन का उद्देश्य है और वे इस की पूर्त्ति में लगे हुए हैं।

और यह भी विचारने योग्य बात है कि भारतवर्ष को सदा मांगने की जगह और जातियों को कुछ देना भी चाहिये। हमारे विद्यार्थी जर्मनी, इंग्लैंड, जापान और अमरीका के द्वारों पर शिल्पशिक्षा के विनीत याचकों के रूप में सदा खड़े रहते हैं। परिवर्तन में हम इन देशों को क्या देते हैं? क्या हम में आत्मसम्मान नहीं है? अथवा हम बुद्धि-धन-शून्यों के पास कुछ नहीं है जिस से उन का ऋण चुका सकें; अब हमारे लिये उचित है कि विज्ञान और कला की व्यापार मंडी में केवल याचकों के रूप में खड़े न रहें। हमें भी कुछ अपनी वस्तुयें दिखलानी चाहिये जिस के परिवर्तन में हम उन से

उन द्वारा निकाली हुई और पूर्ण की हुई मूल्यवान् वस्तुयें मांगते हैं। अपने देश से कुछ कार्य्यकर्त्ताओं के बाहर आने से जो हानि होगी उस की अपेक्षा आत्मसम्मान की प्राप्ति के कारण जो लाभ होगा वह बहुत अधिक है। वर्तमान भारत वर्ष, बायालोजी से ले कर साबुन निर्माण तक की विद्या में शिष्य और याचक है। परन्तु वह उन के परिवर्तन में दो वस्तुयें दे सक्ता है—अपना तत्वज्ञान और धार्मिक जीवन का आदर्श, और ऋण चुकाने के लिये ये पर्याप्त है। वर्तमान भारत निस्सहाय और गिरा हुआ है परन्तु वह प्रत्येक सन्तति में कुछ ऐसे मनुष्य उत्पन्न कर देता है जो भूमि के सार कहे जाने चाहियें-यदि वे जो केवल अपने आप को समझ सकें। हिन्दू समाज सर्वतोभावेन अत्यन्त आचार हीन और कलुषित है, और पश्चिम के पुर्तगाल, स्पेन, बलगेरिया और इटली जैसे निकृष्ट देशों के साथ भी समानता नहीं कर सक्ता। परन्तु मेघों में से विद्युत के समान, उस में से कभी २ ऐसी आत्मायें निकल आती हैं जो इमर्सन और टालस्टाय की समानता कर सक्ती हैं, और यदि वे विस्तृत संसार में निकलें तो मनुष्य जाति पर विपुल प्रभाव डाल सक्ती हैं। इसलिए पुरानी अध्यात्मिक विद्या और आदर्श जीवन के जीते जागते उदाहरण, ये दो चीज़ें जो भारतवर्ष औरों को दे सक्ता है इस से अधिक संसार क्या चाहता है? कला के रहस्यों और यान्त्रिक विद्या के बदले ज्ञान औरधर्म का दान-यह बहुत ही उदार दान है। इस दृष्टि से भी स्वामियों का कार्य्य लाभदायक और आवश्यक है। भारतवर्ष को चाहिये कि स्वार्थी हो कर यथा सम्भव लेने का प्रयत्न करने की अपेक्षा वह भी संसार के विद्या-भंडार में कुछ न कुछ अपना भाग डालता रहा करे।

अन्तमें, मैं अपना विश्वास प्रकट करना चाहता हूं कि हिन्दू समाज में अभी तक जीवनाग्नि विद्यमान है परन्तु उसे उत्तेजित करने की आवश्यकता है। अमरीका में स्वामियों, विद्यार्थियों और श्रमियों का दिखाया हुआ आत्मावलम्ब और निर्माण-कौशल मरी हुई जाति के लोगों में रहना असम्भव है। भारतवर्ष मरा नहीं, पर जीता है। अमरीका में हिन्दुओं को काम करते हुए देख कर ये वाक्य स्वभावतः यात्री के मुख से निकल पड़ते हैं। यह पुराने आर्यों का भाव है जिन्होंने देश को बसाया था और धार्मिक तथा दार्शनिक मत प्रकाशित किये थे। उसी जीवन का यहां फिर से दृष्टान्त दीखता है। सिक्ख बसने वाले मज़बूत आर्यों के प्रतिनिधि हैं, विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्य का जीवन व्यतीत करते हैं और स्वामी अगस्त्य और वशिष्ठ के प्रतिरूप हैं जो म्लेच्छों की शिक्षा के लिये आश्रम खोलते थे? यहां साधारण किसान में भी जो परिवर्तन आ जाते हैं वे बतलाते हैं कि उसके हृदय में, छिपा हुआ सामाजिक भाव और जोश विद्यमान है जो उन दोषों को भस्म कर सक्ता है जिनसे हम पीड़ित हो रहे हैं। मेरा प्रीति पूर्णहृदय, स्वदेश वासियों को आशा का संदेशा भेजता है। कहावत है कि प्रत्येक काले मेघ के किनारे पर रुपहली रेखा होती है। इस समय जो लोग भारतवर्ष में रहते हैं वे केवल काले बादल और विद्युत् की गर्जना ही सुनते हैं और समझते हैं। कि सूर्य्य सदा के लिये छिप गया है। परन्तु मैंने उस रुपहली रेखा को देख लिया है जो उनके लिये अदृश्य है। मैंने वह स्वरूप और विशेषतया अमरीका में देखी है जहां स्वार्थत्याग, दृढ़ता, आचार, और परिश्रम का भाव प्रत्यक्ष है। यहां मुझे पता लगा है कि हमारे देश वाले प्रतिकूल अवस्थाओं में भी श्रेष्ठ गुणों का प्रकाशन

कर सक्ते हैं और कृतकृत्य हो सकते हैं। यहां बात थोड़ी परन्तु काम बहुत होता है, यहां भविष्यत् मनोरथों की अपेक्षा वर्तमान कृतकृत्यता की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। येही गुण राष्ट्र निर्माण के लिये आवश्यक हैं; विचित्र धार्मिक या राजनैतिक विचार और व्याख्यान तथा लेख निरर्थक हैं।

भारतवर्ष मरा हुआ नहीं पर जीता है। विदेश में बहुत कुछ हो रहा है जिसका स्वदेश में ज्ञान नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को चुपचाप परन्तु गम्भीरता से कार्य्य करना चाहिये कि काल जो अनाज को पकाता है और शरद् के पीछे वसन्त को लाता है : जो पत्थर से पशु और पशु से मनुष्य बना देता है; जो योरुप के जङ्गली लोगों को विज्ञान और कला में प्रधानता दिला चुका है; और जो कुछ समय पहले रोम के दासों को भूमि का सम्राट बना चुका है; समय—वह महान् शिल्पी समय जो अघातों का चिकित्सक और पापों का बदला लेने वाला है, हमारे शरीर के भस्मसात हो जाने पर भी हमारे प्रयत्नों को सफल करेगा। (सद्धर्म्म प्रचारक)

यूरोप की नारी।

यदि किसी कन्या से उसके जन्म लेने के पहिले पूछा जावे कि तुम पूर्व देश में जन्म लेना चाहती हो या पश्चिम में, वह क्या जवाब देगी? वह, हो न हो, यही कहेगी कि मैं जन्म ही नहीं लेना चाहती। बात सच है, क्योंकि क्या पूर्व, क्या पश्चिम, क्या हिन्दुस्तान, क्या इङ्गलिस्तान, सभी देशों में स्त्री की दशा एक ही सी है, सभी देश की स्त्रियां पुरुषों की गुलामी करती हैं। जब गुलामी ही करना बदा है, तब क्या पूर्व देश, क्या पश्चिम? "कोउ नृप होय, हमैं का हानी। चेरी छांड़ि न होइबे रानी।" जहां जांय स्त्रियोंको चेरीही बनके रहना पड़ेगा।

परंतु गुलामी किये विना किसी के दिन नहीं कटते। पुरुषों को भी तो गुलामी करनी पड़ती है! राज-सम्बन्धी गुलामी, नीति-सम्बन्धी गुलामी, धन-सम्बन्धी गुलामी, विद्या, बुद्धि, बल, सभी बातों में किसी न किसी तरह से पुरुषों को भी तो बन्धन में रहना पड़ता है। इससे स्त्रियां भी यदि उनकी योग्यता के अनुसार किसी बन्धन में रहें तो क्या विचित्र है? बात तो ठीक है, परंतु स्त्रियों का बन्धन और भी अधिक नीच है, वे गुलामों की गुलामी करती हैं।

इस सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम में एक ही दशा है, अन्तर कुछ नहीं है। अंगरेज़ पादरी और दूसरे आत्माभिमानी यूरोपियन और अमेरिकन लोग कहा करते हैं कि उनकी स्त्रियां समाज में बहुत ऊंची पदवी पर प्रतिष्ठित हैं, वे मर्दों की बराबरवाली समझी जाती हैं, उनको सच्ची स्वाधीनता का सुख मिलता है, और सब बातों में वे पूर्व देशों की स्त्रियों से अधिक सुखी, अधिक बुद्धिमती और अधिक चतुर हुआ

करती हैं। सुनने में ये सब बातें बहुत अच्छी लगती हैं, पर इनमें बस इतना ही ऐब है कि बिलकुल झूठ बातें हैं।

यह डींग कि पश्चिमी स्त्रियां पूर्वी स्त्रियों से अधिक सम्मानित हैं, पुरुष उनका अधिक आदर करते हैं, बिलकुल झूठी है—इतनी झूठी है कि उससे घृणा होने लगती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुष सब जगह एकसे स्वार्थी पशुवत् आचरण करते हैं। यूरोप की स्त्रियों में यदि किसी किसी बुराई की कमी है, तो बहुत सी बातों में उनमें इनसे भी बढ़ चढ़ कर कितनी ही बुराइयां पाई जाती हैं। दोनों समाजों की दशाओं में थोड़ा बहुत अन्तर तो ज़रूर ही होगा, परन्तु उससे स्त्रियों की असली दशा में बहुत अन्तर नहीं पड़ता। दोनों देशों में जैसे एक ओर कुछ अच्छी बातें हैं, उसी तरह दूसरे पक्ष में उतनी ही बुराइयां भी मिलती हैं। उन्नत दशावाली डींग तो स्वप्न की बात है।

कुछ दृष्टान्त देने से ऊपर का कथन स्पष्ट हो जायगा। पहिले बड़े घरों की बात लीजिए। क्योंकि बड़े घरों ही में विद्या, स्वाधीनता, सम्मान आदि की डींग ज्यादः हांकी जाती है। और इन्हीं बड़े घर की मेम साहबों की नकल उतारना आज कल हमारे देश के भी बहुत से विद्याभिमानी लोग अपना जीवन सफल करने में एक मात्र सहायक समझते हैं। हमारे विद्याभिमानी हिन्दुस्तानी भाई देखते हैं कि इनकी स्त्रियां कालेज जाती हैं, पियानो बजाती हैं, नयी नयी पुस्तकें पढ़ती हैं, लेक्चर देती हैं, उपन्यास लिखती हैं। इनकी चाल-ढाल देख कर वह मोहित हो जाते हैं और झट से समझ लेते हैं कि इनकी दशा बहुत उन्नत है। हमारे भाई यह नहीं देखते कि इस चाल-ढाल में कितनी धूर्तता, कितनी घृणा, कितना दुःख, कितनी निर्दयता भरी रहती है,

यद्यपि ऊपर से सुन्दरता की बहार और सभ्यता की झलक नेत्रों में चकाचौंध लगा देती है। वे नहीं समझते कि इन बातों से स्त्रियों का कितना भारी अपमान होता है। स्त्रियों को ये सब बातें क्यों करनी पड़ती हैं? पति ढूंढ़ने के लिए। ऐसा न करें तो उनको पुरुषों की अधीनता रूपी सुख कैसे मिले?

इन बड़े घरवाले समाज में स्त्रियों को १५ वर्ष की अवस्था से अन्तकाल तक दुःख झेलना पड़ता है। क्यों? बिना अन्न-पानी के, बिना कपड़े-लत्ते के, वे एक दिन भी नहीं जी सकतीं। भोजन वस्त्र का कोई न कोई देनेवाला उनको ज़रूर चाहिए। सो वे विवाह न करें तो भूखों मर जायं। भोजन वस्त्र का मालिक मर्द है, और वही जिसे चाहे हाथ उठा कर देता है। कहिए, इन सभ्य देशों में—स्वाधीनता की झूठी डींग हांकनेवाले समाज में—स्त्रियों के लिए स्वाधीन प्रबन्ध क्यों नहीं होता? अन्न, वस्त्र, मकान, जीवन-यात्रा की सारी सामग्रियों के लिए स्त्रियों को पुरुष का मुंह क्यों ताकना पड़ता है? (मैं किसी इनेगिने धनी परिवार की बात नहीं कहता, बात हो रही है सारी स्त्रीजाति और सारी पुरुष जाति के विषय में। किसी इक्के दुक्के की बात नहीं होती।) अप्सरा की सी सुन्दरी स्त्रियां भी हवा पी कर नहीं जी सकतीं। जीवन व्यतीत करने के लिए उनको पुरुष के अधीन होना ही पड़ता है। और इस अधीनता के बन्धन में पड़ने के लिए पूर्वी देश की स्त्रियों को दुःख नहीं उठाना पड़ता। उनके मा-बाप ही उनका योग्य पात्रों से विवाह करवा देते हैं परन्तु यूरोप में बेचारियों की बड़ी दुर्गति होती है। अपने रोटीवाले के लिए—अपने पति के लिए—उन्हें बड़े बड़े दुःख झेलने पड़ते हैं। एक नवयौवना कन्या को इस विशाल संसार में अपना प्रेमी ढूंढ़ना पड़ता है। चाय पीने के प्यालों

में, नाचों में, गिरजों में, जहां देखो वहीं बेचारी रोटीवाले की खोज में लगी रहती हैं। इनके नाच-रंग, दावत, आफत, सब इसी एक मतलब से रची जाती हैं। स्वाधीनता के नाम से बेचारी कन्याओं को कैसी कैसी मुसीबतें उठानी होती हैं! कारलाइल नामक महाज्ञानी अंगरेज़ का कथन है कि "स्वाधीनता है तो बड़ी अच्छी चीज़! परन्तु भूखों मरने के लिए स्वाधीनता कभी अच्छी नहीं होती।" यूरोप की कन्याओं की स्वाधीनता भी इसी सांचे की ढली होती है।

बाजा बजाना, गाना, कालेज में पढ़ना, अधनंगी हो कर नाचना, कूदना, यह सब वहां की सभ्यता की शिक्षा के अंग हैं। इनकी क्या आवश्यकता है? वही पुरानी बात— विवाह! इन बेचारियों को हाव-भाव की भी शिक्षा सीखनी पड़ती है। हाव-भाव से मतलब, कोई पुरुष आवे तो उसका मन हर लेने के लिए उठना, बैठना, नज़ाकत दिखाना, इत्यादि ही है। इन्हीं हाव-भावों, इन्हीं सभ्यता के अङ्गों को सीखने के लिए बेचारियों को अपनी माताओं से धमकियां घुड़कियां सुननी पड़ती हैं। जो ऐसा न करेंगी, जो पुरुषों का मन अपनी चटक मटक से बहका न सकेंगी तो आगे चलकर उसे खाना-कपड़ा कौन देगा? मा-बाप कब तक उसे पालेंगे? मर्द के लिए जैसे रोज़गार, नौकरी-चाकरी है, स्त्री के लिए उसी भांति मर्द की गुलामी करना, उसकी पत्नी बनना भी रोज़गार या नौकरी है। जैसे बे-रोजगार मर्द, वैसे ही अनब्याही स्त्री। स्त्री पियानो उसी लिए बजाती है जिस लिए उसका भाई कोई पेशा सीखता है। मतलब वही एक ही बात हंडिया की खुद बुद, दाल रोटी का मामला। फिर स्वाधीनता कहां रही?

ब्याही जाने के लिए, या ब्याहने को अच्छे पुरुषों का मन मोह लेने के लिए, शिक्षाकाल में तो बेटियों को गाना, बजाना ठसक मसक, सभी बातें सीखने के लिए अपनी माताओं से ताड़ना खानी ही पड़ती है; परंतु यौवन में भी उनकी दुर्दशा बहुत बुरी तरह होने लगती है। रात दिन वह पुरुषों का मन मोहने की जुगत सोचा करती हैं। जो समय उनको धर्म-चर्चा, सच्ची शिक्षा, गृहधर्म आदि में बिताना चाहिए, वह समय नाच में, रंग में, खेल में, कूद में, अपने हृदय को कलुषित करने में, खर्च होता है। किसी मर्द को अपना भर्त्ता बनाने के लिए उन्हें खुशामदी, भांड़, दिल्लगीबाज, और नचैए गवैयों की श्रेणी में उतरना पड़ता है। है तो यह अवनति, पर लोग इसको उन्नति कहते हैं। फिर इन कामों के करने में नवयौवना कन्याओं को कैसे कैसे लालचों में, कैसी कैसी पाप चिन्ताओं में डूबी रहना पड़ता है, और बहुधा उनको सचमुच कैसी निर्लज्ज दशा में गिरना पड़ता है, उसका कहना ही क्या है ? क्या इस भांति स्वयम्वरा होने से हमारे देश की विवाह-पद्धति बुरी है ?

और विवाह की इच्छा रखने वाले सभ्य पुरुषों की बात क्या कहूं ? वे जैसा चाहते हैं, उनको प्रसन्न करने के लिए स्त्रियों को वैसा ही करना पड़ता है। उन्हीं के लिए बेचारी सरला सीधी सादी पवित्र कुलकन्याओं को इतने दुःख झेलने पड़ते हैं। तिस पर भी सभ्यताभिमानी पुरुष महाराज स्त्रियों का कितना आदर करते हैं, इस बात को अंगरेज़ी कवि किपलिंग ही ने एक जगह साफ कह दिया है। एक स्त्री ने कहा, "तुम चुरुट मत पिया करो।" चुरुट पीने से तुम्हारी देह से बड़ी बुरी बास आती है। चुरुट पियोगे तो मैं तुम से विवाह नहीं करूंगी। पुरुष महाराज सोच रहे हैं, नहीं, नहीं,

स्त्री के लिए मैं अपने आराम की चीज़ नहीं छोड़ूंगा। स्त्रियां तो एक नहीं, मन मानी मिल जायंगी, चुरुट तो चुरुट ही है। मतलब यह, कि पुरुष अपने स्वार्थ के सामने स्त्री का मूल्य एक चुरुट से भी तुच्छ समझता है। यह हमारे असभ्य भारतवर्ष की बात नहीं है। इस बात से एक महासुसभ्य समाज के महाप्रतिष्ठित कवि ने अपने समाज का चित्र दिखाया है।

जब भारतवर्ष की नारी को पति, घर और सुख के सभी साधन आप से आप घर बैठे मिल जाते हैं, तब क्या उसकी दशा अपनी पश्चिमी बहिनों से श्रेष्ठ नहीं है?

पश्चिमी नारी को इतना करने पर भी पति नहीं मिलता। बहुत से पुरुष अपना विवाह ही नहीं करते। वे भौंरों की भांति पुष्प से पुष्पान्तर में उड़ उड़ कर मधु चाखा करते हैं। अहा, कैसा अच्छा सम्मान है इन सभ्य पुरुषों का अपनी स्त्रियों के लिए!

जब बहुत से पुरुष विवाह नहीं करते तो बहुत सी स्त्रियां भी अनब्याही रह जाती है। उनका क्या होता है? वे जन्म भर 'हाय ब्याह, हाय ब्याह,' करती करती बुढ़िया हो जाती हैं, उनके मन का अरमान उनके साथ साथ कबर में गड़ जाता है। और पेट भरने के लिए उनको दफ़्तरों में लिखना, पढ़ना, स्कूलों में पढ़ाना, दुकानों में दर्ज़ी के कपड़े सीना, बाजा सिखलाना, धनी परवारों के लड़कों को पालना, इत्यादि काम करके पेट भरना पड़ता है। एक एक डाकख़ाने में स्त्रियां खिड़कियों के सामने अपनी नौकरियों पर दिन दिन भर खड़ी रहती हैं। बहुत सी स्त्रियां अपने घरों में किरायेदार बसा लेती हैं, और उनके लिए भोजन बनाती हैं, उनकी कोठरियों की झाड़ू बुहारी करती हैं, उनके

बिछौने बिछाती हैं, उनके जूतों में स्याही लगाती हैं, और इसी भांति किरायेदारों की दासी बन कर जन्म काटती हैं। ये स्त्रियां बहुधा लिखी पढ़ी और भले घर की होती हैं, तब भी इनको पेट के लिए नीच वृत्तियां करनी पड़ती हैं। और यूरोप वाले, जो स्त्रियों का इतना सम्मान करते हैं, अपनी बहिनों, बेटियों, भतीजियों से इस तरह काले आदमियों की गुलामी कराना बुरा नहीं समझते, पर आप उनको खाने के लिए एक टुकड़ा नहीं देते। इन बेचारी असाहाया नारियों को देख कर विलायत में गये हुए हिन्दुस्तानी मन में सोचते हैं क्या इनके भाई, बाप, चाचा या कोई आत्मीय नहीं हैं जो बेचारियां अकेली ज्यों त्यों करके अपने पेट पालने को छोड़ दी जाती हैं। जहां स्त्रियों की इतनी इज़्ज़त की डींग सुनते थे, क्या इनके आत्मीयों को इनकी इज़्ज़त की परवाह ही नहीं है ? क्या इस बनियेशाही में जहां लोग परस्पर लूटने ही को मिला करते हैं, क्या इस देश में स्त्रियों का गौरव ही मिट जायगा ?

कुछ स्त्रियां जिनके पास धन है, अपने धन के बल से पुरुष पा जाती हैं। उनका सम्मान तो ऐसा ही वैसा होता है, उनके लिए किसे क्या पड़ी है, परन्तु उनके धन की लालच से शहद पर मक्खियों की भांति पुरुष उनके पीछे लगे रहते हैं। धन के लालच से विवाह यूरोप में एक साधारण बात है।

कहने को लोग अपने मुँह आप लाख मियां मिट्ठू बना करें, पर सभ्य देश की बात ऐसी ही है। स्त्रियों के सामने दिखावटी सम्मान और झुक झुक कर सलाम एक प्रकार की कसरत या जिमनास्टिक ही है। हम लोगों को तो देख देख कर हँसी आती है।

विवाहित जीवन किसी स्त्री को बुरा नहीं लगता। जब विवाह में इतनी कठिनाइयां होने लगीं, तभी पढ़ी लिखी स्त्रियां कोई डाक्टर होती हैं, कोई वकालत सीखती हैं, कोई सम्पादक बनती हैं। परंतु जब इन पेशों में मर्द ही भूखों मरते हैं तब स्त्रियां भी जो मर्दों के कामों में हिस्सा बटाने लगेंगी तो उनको क्या मिलेगा? वे बेबस होकर ही ये सब काम करती हैं। नहीं तो स्त्रियों का स्त्रीत्व गृहस्थी ही में फलीभूत हो सकता है। विवाह के बाज़ार में कोई उनको नहीं पूछता, पारिवारिक सुख की उनको आशा नहीं रहती, तभी बेचारियां दूसरे पेशे ढूढ़ने लगती हैं। और धनार्जन के लिए लोभ, ईर्षा, चालाकी, आदि से सहायता लेनी पड़ती है, जिनके फंदे में पड़ कर स्त्रियों का स्त्रीत्व, उनकी कोमल वृत्तियां धीरे धीरे नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। यदि कोई स्त्री इन सब झगड़ों से अलग रहने के कारण कुछ अज्ञानता ही में रहती हो, तो ऐसी अज्ञानता भी अच्छी है। ऐसी अज्ञानता उसको संसार की कुटिलता और दुष्टता से तो बचा रखती है। परन्तु दिन दिन आगे बढ़ने वाली यह सभ्यता बेचारी स्त्री को भी घसीट कर दूकानदारी में खींच लाती है। स्त्री को भी झूठ बोलना, धोखा देना, मोल भाव और लेन देन करना पड़ता है; उसको भी सस्ते में लेने और महँगे भाव देने की रीति सीखनी पड़ती है। इस भांति की स्त्री-स्वाधीनता दो धार की छुरी का काम करती है, या यों कहिए कि छुरी के घाव पर निमक छिड़कती रहती है; क्योंकि पहिले तो स्वाधीनता स्त्रियों का स्त्रीत्व—उनकी गृहस्थी का राज पाट—छीन लेती है; दूसरे, ऊपर से उनके सिर जीविका की चिन्ता भी मढ़ देती है। इतने ही से यूरोप के जेन्टिलमैनों के स्त्री-सम्मान का दृष्टांत मिल जाता है।

ये तो अनब्याहियों की बात हो चुकी। विवाहिताओं की दशा भी अच्छी नहीं होती। उनके पुरुष उनसे सच्चे प्रेम का बर्त्ताव नहीं रखते और एक फरासीसी लेखक ने साफ साफ लिख दिया है कि पुरुषों के दो तरह की स्त्रियां होती हैं; एक विवाहिता और दूसरे साधारणतः दो, एक, या और भी अधिक रक्षिता। वहां के लोग खुल्लमखुल्ला तो एक ही विवाह करते हैं, परन्तु अधिकांश लोग बहुपत्नीक ही होते हैं, चाहे वह पत्नी धर्म-पत्नी न भी हो।

उच्च और मध्य श्रेणी की शिक्षा की बात जो सुनी जाती है वह बिलकुल ऊपरी शिक्षा ही होती है, गहरी शिक्षा नहीं कही जा सकती। कालेजों में जानेवाली स्त्रियां भी कुछ गम्भीरता या बुद्धि की बातें नहीं सीखतीं। किसी के मन की गहराई जांचनी हो तो उनसे बात चीत करो। इन शिक्षाभिमानी स्त्रियों से बात करने में तबियत ऊबने लगती है। सिवाय पराई चर्चा के और कुछ उनको नहीं सुहाता। घर पर पढ़ती भी हैं तो नावल। हिन्दुस्तानी तो शक्की या 'सुपरस्टिशस' के नाम से बदनाम हैं ही, परन्तु ये पढ़ी लिखी सभ्य स्त्रियां भी पक्की 'सुपरस्टिशस' होती हैं। इसलिए पाखंडियों को इन लोगों में तिजारत करने का अच्छा अवसर मिलता है। अमेरिका सायन्स या विज्ञान की भूमि है, परन्तु वहां भी झूठी बातों की चर्चा यानी 'सुपरस्टिशन' पायी जाती है। हाथ देख कर भला बुरा बताने वाले या जादूवाले सब शहरों में उतनी ही अधिकता से पाये जाते हैं जितनी कि नाऊ या धोबी। प्रेम की चुटकियों, यानी यन्त्र मन्त्र गंडे तावीज का व्यापार भी बड़ी ज़ोर से चलता रहता है। फिर उनकी शिक्षा को शिक्षा कैसे कहें? और अपने देश की स्त्रियों को जो सच्ची शिक्षा--गृहस्थी की शिक्षा दी जाती है उसे भी

कैसे सत्य न मानें ? फिर कैसे कहें कि वहां की स्त्रियों की दशा यहां वालियों से उन्नत है। दोनों बहुत सी बातों में एक ही सी देख पड़ती हैं।

ऊपर हम जो कुछ कह आये हैं, वह सब उच्च और मध्यम श्रेणीवालियों की बात है। अब तनिक नीच श्रेणी वा मज़दूर जाति की नारियों की बात सुनिए। किसी देश की सच्ची दशा देखनी हो तो निरे महलों ही की सैर मत कीजिए गली कूचों की पर्णकुटियों का भी दर्शन करना ज़रूरी है। जहां के कमकर लोग प्रसन्न है वहां की महा-जाति भी बहुत प्रसन्न होगी। इससे कमकर जातियों ही के अवलोकन से महा-जाति की सच्ची दशा जान पड़ेगी। पश्चिम की कमकर जाति की दशा तो पहिले देखनी चाहिए। वहां की स्त्रियों को भयंकर कठिनाई और विपत्ति से युद्ध करना पड़ता है। कमकर जाति की स्त्रियां तो मानो मोल ली हुई गुलाम हैं। छोटी छोटी लड़कियों को कारखानों में अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करना पड़ता है। माताएं भी अपने बच्चों को छोड़ कर कारखानों में काम करती हैं। अब जरमनी में एक दान-सभा बनी है जिससे बच्चा जनने के बाद माताओं को छः हफ़्ते तक खाने को मिलता है, परन्तु इस समय के पीछे वे फिर कारखानों में घुसती हैं, नहीं तो भूखों मर जांय। कहीं कहीं बच्चों के रहने के लिये कारखानों में एक जगह बनी रहती है, जहां माताएं काम से छुट्टी पाते ही जा कर उनको दूध पिला आती हैं। परन्तु यह सुख सब जगह नहीं मिलता। सब जगह दूध पीते बच्चे तक काम के समय माता के पास नहीं ठहरने पाते। फल इसका यह होता है कि अकेले जर्मनी में बीस लाख बच्चों में से चार लाख जन्म लेने के पहिले ही

वर्ष में मर जाते हैं। इसी का नाम है सभ्यता! इसी सभ्यता का दम भरनेवाला यूरोप है! स्त्रियों को सवेरे से शाम तक कारखानों में काम करना पड़ता है। तब वह घर आकर फिर रात में काम करती हैं। अमेरिका के बड़े बड़े कारखानों में जहां भद्र घर के मनुष्य रेशम, साबुन, इत्र, फ़ीते आदि मोल लेने जाते हैं,--वहां युवती स्त्रियों को दिन भर बारह चौदह घंटे काम करने पर जो मज़दूरी अमेरिका के सिक्के में मिलती है हिन्दुस्तानी सिक्के मेंउसका मूल्य डेढ़ आने के पैसों से ज़्यादा नहीं होता। चौदह घंटे की मेहनत से छः पैसे की आमदनी युवा स्त्रियों की हुई! दिन भर उनको खड़ी रहना पड़ता है, और इससे उनका शरीर भी जल्दी टूट जाता है। किन्तु युरोप के बाँके छैले जेन्टिलमैन, जो अपनी स्त्रियों का इतना अधिक सम्मान करते हैं, कभी अपनी इन ग़रीब बहिनों की ओर ताकते तक नहीं। अकेले युनाइटेड स्टेट्स ही में ऐसी ६० लाख अबलाएँ हैं जिनको दिन भर पसीने बहाने पर दो आने से ज़्यादा नहीं मिलता। और उनसे परिश्रम इतना लिया जाता है कि कोई साधारण धोबी अपने गधे से भी इतना परिश्रम नहीं लेता होगा। न्यूयार्क में कुछ परदेशी परिवार रहते हैं जिनकी स्त्रियाँ बड़ी रात बीतने तक नकली फूल, जालियाँ, टोपी, आदि बना कर एक आना रोज़ कमा लेती हैं। वे रहती ऐसी कोठरियों में हैं जहां सूअर भी रहने से घृणा मानेंगे।

अब और ज़्यादा लिख के क्या होगा? जो लोग विलायती सभी बातों को अच्छा बताते हैं, वे विचारशील मनुष्य नहीं। यदि वे कुछ विचार करके दोनों देशोंकी दशाको मिलावेंगे तो उनको कहना ही पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के लिए पुरा-

तो हिन्दुस्तानी शिक्षा ही लाभकारी है। नई रोशनी के सभ्यताभिमानी जो हमारी स्त्रियों की दशा गिरी हुई समझ कर उन्हें विलायती ढांचे में डालना चाहते हैं, वे देश के शुभ-चिन्तक नहीं हैं॥

(गृहलक्ष्मी)

राष्ट्र की सम्पत्ति।

"जिनको अधिक दिया जाता है, उनसे अधिक ही की आशा भी की जाती है" ऐडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "राष्ट्रों की सम्पत्ति" में अर्थ शास्त्र विषयक सिद्धान्तों की व्याख्या की है। परन्तु वास्तव में राष्ट्रों की मुख्य सम्पत्ति या धन, चांदी और सोना, अन्न और पशु नहीं है। हम इस लेख में बतलावेंगे कि मानवजाति और राष्ट्रों की वास्तविक सम्पत्ति क्या है और संसार की बुराइयों को नष्ट करने के लिए उसको कैसे काम में लाना चाहिये। दुनिया की स्थायी सम्पत्ति स्त्रियों और पुरुषों की बुद्धि और आचरण है। ज्ञान और चरित्र रूपी पूंजी सारे सुखों का पथप्रदर्शक है। मनुष्य समाज के लिए शुभचिन्तकों को इस मूल-धन के उचित उपयोग पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग पर ही जाति का भविष्य निर्भर है। हमारा भोजन और वस्त्र, हमारी औषधि और चिकित्सा, हमारे सुख और प्राकृत-सुख साधन, हमारी सुन्दर सामाजिक संस्थाएं और हमारी सभ्यता की विस्मयोत्पादक विशाल रचनाएं, हमारे भूतकाल की कीर्तियां, वर्तमान की कोशिशें और भविष्य के आदर्श इसी के सदुपयोग पर अवलम्बित हैं। मनुष्यों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति भौतिक पदार्थों से होती है और ये भौतिक

पदार्थ लोगों के आन्तरिक उत्कर्ष की वृद्धि और उसके संरक्षण या उचित उपयोग द्वारा उत्पन्न होते हैं। एफ्रिका की असभ्य जातियां प्रकृति के महान विभवों में रहते हुए भी अपनी मानसिक निर्बलता के कारण भूखों मरती हैं किन्तु सभ्य जातियां अपने विद्या और चरित्र बल के कारण स्काटलैंड के दलदलों और कनाडा के ऊजड़ स्थानों में बड़े चैन से जीवन व्यतीत करती हैं। जितना ही लोग बुद्धि और आचरण का अधिक सदुपयोग करते हैं उतने ही अधिक वे दरिद्रता, मूर्खता और रोग से मुक्त होते हैं।

अन्तरात्मा बाह्य जगत पर प्रभुत्व प्राप्त करती है; अदृष्टि दृष्टि से प्रबलतर है; मन और अंतःकरण द्वारा मनुष्यकी शारीरिक आवश्यकताएं भी अधिकतर सम्पादित होती हैं।

आइए, ज़रा देखें! भारतवर्ष के लोग अपनी बुद्धि का—उस दुर्लभ और दुष्प्राप्य शक्ति रूपी बुद्धि का—जो किसी जाति के सामाजिक शरीर को रच कर खड़ा कर देती है और जो प्रकृति के गुप्त भेदों को उसके कृपण हाथों से छीन कर मानव जीवन को सौन्दर्य और गौरव प्रदान करती है—कैसा दुरुपयोग कर रहे हैं? यह दुरुपयोग तीन प्रकार से किया जा रहा है (१) दुराचार द्वारा धन कमाने में (२) मिथ्या दर्शनशास्त्र के प्रचार में (३) और मनोरञ्जन में।

(१) वर्त्तमान भारत में ऐसे लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या है जो अपनी मानसिक शक्तियों पर अत्याचार कर रहे हैं और जो बुद्धि ऐसे पवित्र उपहार का घृणित स्वार्थ की पूर्ति और धन की प्राप्ति के लिए बलिदान करते हैं। पुरानी चाल के पण्डित इस दोष से किसी क़दर मुक्त हैं इसका कारण यह है कि बनारस और नदिया के पण्डित धन कमाने के लिए ही

विद्यार्थियों को शिक्षा नहीं देते। यह बड़ी चिन्ता की बात है कि हमारे बीच में पढ़े लिखे किराये के टट्टुओं की एक ऐसी बड़ी तादाद बढ़ रही है जो अपने भाइयों पर मुसीबत और बरबादी लाकर अपनी जीविका कमाते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष की विद्या और बुद्धि देशवासियों के लिए सुखकारक और बलदायक न हो कर उलटा उनका हनन कर रही है। यह बड़े शोक की बात है कि दुनियां के सब मुल्कों में बुद्धि धन के हाथ क़रीब २ हमेशा से बिकती आई है। विद्या और बुद्धि का इस प्रकार बेचना उतना ही निन्दनीय है जितना कि एक ख़ूबसूरत औरत का अपनी ख़ूबसूरती की तिजारत करना। बुद्धि को समाज और देश की उन्नति करने में लगाना चाहिये क्योंकि यह एक ऐसा ताक़तवर और ज़बरदस्त हथियार है कि यदि किसी ने निज के स्वार्थों और मन्तव्यों के सम्पादन करने में इसका दुरुपयोग किया तो वह समाज को चकनाचूर करके व्यक्तियों में सिर फुटव्वल करवा देता है और शताब्दियों की सामाजिक उन्नति को नष्ट कर देता है। बुद्धि बलधारी पुरुषों को चाहिये कि वे अपनी बुद्धि का दुरुपयोग कदापि न होने दें क्योंकि बुद्धि के उपयोग या दुरुपयोग से ही उनका जीवन संसार के लिए आशीर्वाद वा शाप के तुल्य हो सकता है। वर्त्तमान भारत दौलत के लिए दीवाना हो रहा है और इस असर से विद्वान् भी अपने आपको नहीं बचा सके हैं। इनको उचित तो यह था कि सत्य और न्याय के प्रचार में अपने आपको न्योछावर कर देते किन्तु इसके विरुद्ध बहुतों ने अपने को असत्य और छल की फ़ौज में भरती हो जाने दिया है। इन वैतनिक सेवकों के बिना धनी लोग एक दैत्य का बल रखते हुए भी किसी को हानि नहीं पहुंचा सकते। भारत के बुद्धिमान और विद्वान् धनवानों और

अभिमानियों के द्वार पर रोटी के टुकड़े मांगने में तत्पर हैं और ग़रीब और निर्बल पीसे जा रहे हैं।

(२) भारतवर्ष में तत्वज्ञान या ब्रह्मज्ञान मूर्खता का सदैव से सहायक रहा है। अर्थात् ज्ञान के नाम से बहुत कुछ अज्ञान का प्रचार किया गया है। प्रथम तो भारतवर्षीय विद्वानों की अधिकतर मानसिक शक्ति धनोपार्जन रूपी आखेट में खर्च होती है और बाकी जो बचती है उसे शुष्क ज्ञानवाद हड़प कर जाता है। शुष्क ज्ञानवाद भारत के लिए एक शाप सिद्ध हुआ है। इसने इस देश के इतिहास के रूप को बिगाड़ कर उसको सत्यानाश कर दिया। इस मिथ्या ज्ञान के फेर में पड़ कर बड़े २ आदमी बकवादी और बातूनी हो गये और वे निष्प्रयोजन और निष्फल गवेषणाओं और प्रयत्नों में शताब्दियों से अपनी बुद्धि को नष्ट कर रहे हैं। इस के कारण जल्प और वितण्डा ने एक शास्त्र की पदवी प्राप्त कर ली है और निःसार और खोखली कल्पनाओं को तत्वज्ञान का स्थान मिल गया है। भारतवर्ष के बड़े २ पण्डित सैंकड़ों वर्ष से एक ऐसे अंधकूप में पड़े हुए हैं कि उन्हें नितान्त ऊटपटांग बातें भी सच्चाइयां प्रतीत होती हैं। इस झूठे ज्ञान की बदौलत हमारे लिए अन्धकार प्रकाश हो गया और हम शब्द जाल रूपी भूलभुलैयां को बड़े २ जटिल प्रश्नों का अन्तिम निर्णय समझ बैठे। हमारी विचार शक्ति कितनी नष्ट हुई है इसका हिसाब हम नहीं लगा सकते। इसने कैसी २ महान् आत्माओं को दासत्व की शृङ्खला में जकड़ कर बरबाद कर दिया। जिस प्रकार कोई देशद्रोही शत्रु से मिल कर अपने ही देश की हार का कारण होता है उसी तरह भारतवर्षीय ब्रह्म-ज्ञान, सच्चाई का दिली दुश्मन अपने असली रूप को सदैव वाग्जाल में छिपाते हुए हमारी अवनति का कारण हुआ। इस

देश में जो विद्वान् जितना अधिक अहंकारी, ढोंगी, बातूनी और हठी हुआ वह उतना ही अधिक प्रमाणिक समझा गया। इन ब्रह्मज्ञानियों की ऊलजलूल शब्द रचनाओं ने सच्चे और पुष्ट विचारों का स्थान छीन लिया। भारतवर्ष ने इस ब्रह्म-विद्या रूपी मनमोहिनी स्त्री के प्रेम में पड़ कर बहुत नुक़सान उठाया है। बुद्धदेव ने हिन्दुओं को दार्शनिक मतभेदों से दूर रहने का उपदेश दिया था परन्तु उस महापुरुष का कहना निष्फल हुआ और उसके उपदेशों का उपहास उड़ाया गया।

जिस तरह एक सांप की ज़बरदस्त आकर्षण शक्ति से एक चिड़ियां उसके मुंह में खिंच जाती है उसी तरह हिन्दुओं की बुद्धि इस ब्रह्मज्ञान की ओर खिंच जाती है। इसने हिन्दुओं की कलाओं और विद्याओं की जड़ काट दी है। आओ अब हम इसका अन्त करें। इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य-जाति की बाल्यावस्था में हुई थी, परन्तु शोक इस बात का है कि हिन्दोस्तान बालिग़ होकर भी लड़कपन के खेलों से अब तक खेल रहा है। यदि ऐसी अवस्था में उसे पश्चिम का शिष्य बनना पड़े तो आश्चर्य ही क्या है!

यह कैसे दुःख की बात है कि वे लोग भी, जो जाति का भला करना चाहते हैं, अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं और रोटी की जगह पत्थर दे रहे हैं। एक ओर तो दुर्भिक्ष, महामारी और मलेरिया देश का सत्यानाश कर रहे हैं और दूसरी ओर हमारे ब्रह्मज्ञानी महात्मा ब्रह्मविद्या के रहस्यों और नित्यानित्य पदार्थों की खोज में लगे हुए हैं। देश भर में ऐसा एक भी कलाकौशल का विद्यालय, विज्ञानालय या पुस्तकालय नहीं है जिसे हम आदर्श रूप कह सकें। पदार्थ-विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति इस देश के शिक्षित समुदाय के लिए भयावनी चीज़ है।

मेरे मित्रो ! जहां तुम अपने शास्त्रों की निष्प्रयोजनीय बातों को पढ़ कर आनन्द में मग्न हो जाते हो और उनकी प्रशंसा में मैक्समूलर और शोपनहार के मत को उद्धृत करने लगते हो वहां दुनिया वैज्ञानिक आविष्कारों, आर्थिक सुधारों और राजनीति के आन्दोलनों में आगे बढ़ती चली जा रही है। उपनिषद् चिल्ला चिल्ला कर कह रहे हैं कि उस तत्व को जानो जिसके ज्ञान से सब कुछ जाना जाता है, हमारी समझ में भारतवर्ष के मध्यकालीन दार्शनिकों की यह मिथ्या कल्पना ही यहां के शुष्क मायावाद और आत्मवाद आदि निःसारवादों की जड़ है। भारतवर्ष की पुस्तकें असम्भव प्रलापों, विलक्षण कल्पनाओं और अस्तव्यस्त तर्कनाओं से परिपूर्ण हैं। शोक है कि हम अब तक इस बात को नहीं समझते। हम अब भी पुरानी लकीर को पीट रहे हैं और पश्चिमीय साहित्य का अनुवाद करने के स्थान में हम पुरानी पुस्तकों को ही बार २ सम्पादित करते जाते हैं।

यदि फ्रेडरिक हैरीसन, विरशूफ़ज़, बेबल, अनाटोल फ्रांस, हर्वे, हैकल, गिडिङ्गज़ और मार्शल आदि विद्वान डन्स स्कोट्स और टामस अक्वीनस आदि पर ग्रन्थों की रचना करते अथवा पेन्टाटियुश के कानून और बेयोवल्फ की कविता पर टीका करते तो आज योरप की क्या हालत होती ? उनकी समझ में हमारे पण्डितों और शिक्षित लोगों में प्राचीन काल की निष्फल बातों में लगे रहने की झक सी हो गई है। उन्नत विचारों के रखनेवाले कुछ आदमी मिल कर एक विद्यालय स्थापित करते हैं और उसका उद्देश्य व्याकरण और छहों शास्त्रों द्वारा वेद की शिक्षा देना होता है। बुद्धि प्राप्त करने का यह कैसा झूठा रास्ता है। यह तो ऐसा ही हुआ कि एक यात्री-दल जल प्राप्त करने के

लिये सारे रेगिस्तान को पार कर डेड सी (Dead sea) के किनारे पहुंचे। भारतीय युवको! तुम अपनी ब्रह्मविद्या की सड़ी गली पुस्तकों से बुद्धि प्राप्त करने की आशा मत रखो। उनमें शब्द-जाल के सिवा और कुछ नहीं है। यदि तुम जीवन के महत्व और उसके प्रश्नों को समझना चाहते हो तो रूसो और वाल्टर, प्लेटो और एरिस्टाटिल, हैकल और स्पेन्सर, मार्क्स और टाल्सटाय, रस्किन और काम्टे और अन्य पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थ पढ़ो। तुम आज से तीन हज़ार वर्ष पूर्व के ज़माने में नहीं रहते हो। तुम देहाती छकड़ों में सवार नहीं होते हो, तुम्हें हाथ को लिखी हुई पुस्तकें अब पढ़नी नहीं पड़ती हैं तब फिर क्यों तुम अपने अध्ययन में इतने पिछड़े हो कि तुम्हें उसी पुरानी लकीर को पीटना पड़ता है जो तुम्हारे बुद्धिमान पूर्वज शताब्दियों के पहले खींच गये थे। तुम्हारे पूर्वज बुद्धिमान थे और अपने समय के लिए पूर्णतया उपयुक्त थे परन्तु वर्तमान काल के लिए और ही प्रकार के बुद्धिमान आदमियों की आवश्यकता है। किसी समय के लोग बुद्धि के ठेकेदार नहीं हो सकते। तुम भविष्यत् काल के योग्य बनने के लिये बहुत दूर के भूतकाल की ओर क्यों देखते हो? ऐसा करना तो अवर्णनीय मूर्खता है। ब्रह्म-विद्या को, व्यर्थ समय गवाने वालों और मनमाने अर्थ लगाने वालों के लिये छोड़ दो और तुम अर्थ-शास्त्र और राजनीति के अध्ययन में लिप्त हो जाओ। कल्पित बातों के प्रेमियों ही को ईश्वर-विद्या के सिद्धान्तों पर लड़ने झगड़ने दो और उन्हीं को ईश्वर ज्ञान और दर्शनों के अन्य गूढ़ तत्वों पर सर-फुड़ौवल करने दो। हमारे सामने इससे कहीं अच्छा काम करने के लिये मौजूद है। जीवनकाल थोड़ा है और काम बहुत से करने हैं। हमारे पास धार्मिक रूढ़ियाँ

और सिद्धान्तों के व्यर्थ झगड़ों में ख़र्च करने के लिये समय नहीं है। हमारी दृष्टि में ये सब बातें एक ही सी हैं। हमें इस बात की आवश्यकता नहीं कि हम उनमें किसी प्रकार का अन्तर ढूंढ़ते फिरें। ज़रा पाश्चात्य देशों के उन बड़े बड़े विद्वानों की ओर देखो जो सामाजिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में गण्य-मान समझे जाते हैं, जो उस आधुनिक सभ्यता के जन्मदाता हैं जिसके वैज्ञानिक खोज, सामाजिक समानता, स्वतंत्रता, सहिष्णुता, तर्क Rationalism और भ्रातृ-भाव आदि मूल सिद्धान्त हैं। बेकन ने कहा है "इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है।" उसके ये शब्द ही बुद्धिमत्ता से भरे हुए हैं। समाज शास्त्र ही बुद्धि का दाता है, ब्रह्म-ज्ञान अथवा ईश्वर-विद्या नहीं। वर्तमानकाल में समाज शास्त्र ही की दो प्रसिद्ध शाखायें अर्थ-शास्त्र और राजनीति भारत के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगी।

(३) भारतीय शिक्षित लोगों की बुद्धि जिस तीसरी बात में खर्च होती है-वह कल्पित-साहित्य की रचना है; पैसी कविता और उपन्यास की रचना में-जिसमें पुराने समय के प्रेम अथवा सामाजिक रीति का चित्र खींचा जाता है हमारे कितने ही बङ्गाल, अवध, गुजरात और अन्य प्रान्तों के वर्त्तमान प्रतिभाशाली निवासी लिप्त हैं। इस प्रकार का साहित्य बहुत ही अच्छा और शिक्षाप्रद है परन्तु भारत के पास इस प्रकार के साहित्य का इस समय इतना बड़ा ख़ज़ाना है कि उसे अभी उसकी बहुत दिनों तक कुछ भी आवश्यकता नहीं है। मनोरञ्जक बातों की रचना उस समय तक रुकना चाहिए जब तक हम विज्ञान और समाज शास्त्र की कमी की पूर्ति न कर लें। भारत की बुद्धि का इस प्रकार अभी अपव्यय न होना चाहिए क्योंकि हमारे उपयोगी साहित्य का प्रत्येक

विभाग बेतरह दरिद्र है। शिक्षाप्रदायिनी बातों के बाद मनोरञ्जन की बातों की रचना होनी चाहिए। आवश्यक बातों के पश्चात् आमोद प्रमोदकारी बातों की रचना उचित है।

भारत अपने राष्ट्रीय धन की दूसरी शक्ति अर्थात् अपनी नैतिक शक्ति को किस प्रकार खर्च करता है? वह उसका वैसे ही अपव्यय करता है जैसे वह अपनी मानसिक शक्ति का अपव्यय करता है। एकान्त में बैठकर विचार की तरङ्गों में गोते खाना भारतीय सपूतों का समय काटने का एक प्रिय ढङ्ग है। वे तुच्छ स्वार्थपूर्ण इच्छाओं और विचारों से तो परे हो जाते हैं सही परन्तु विचार और अकर्मण्यता के गहरे गढ्हे में वे गिर पड़ते हैं। वे त्याग का सिद्धांत सब बातों में ठूसते हैं। भारतवर्ष में इस प्रकार के सैकड़ों सच्चे और शुद्ध हृदयधारी युवा पुरुष और स्त्रियां हैं जिनके पास तक लोभ और दुनियादारी नहीं फटकती, परन्तु वे किसी भी प्रशंसनीय काम को नहीं कर सकते। ब्रह्म का साक्षात् प्राप्त करने के लिए वे पर्वतों पर आश्रम बना कर निवास करते हैं। अपने साथियों के साथ जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के बदले वे नाना प्रकार के आसनों और अन्य रहस्यपूर्ण बातों द्वारा उच्चपद प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार के कितने ही संन्यासी यश अपयश, भूख प्यास धन और प्रभुत्व की कुछ भी परवाह नहीं करते। निस्सन्देह उन्होंने त्याग के बहुत ही उच्च पद को प्राप्त कर लिया है, परन्तु शोक है उनके इस उच्चपद की प्राप्ति से उनके भाइयों का कुछ भी भला नहीं होता क्योंकि वे व्यावहारिक जीवन के नियमों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। वेदान्त-सूत्र, उपनिषद् और "ओम्" शब्द का भजन ही उनकी जमा पूंजी है। उन की समझ में "ओम्" शब्द ही संसार का सारा इतिहास

और विज्ञान है। "ओम्" शब्द ही उस मानसिक स्तब्धता का कारण प्रतीत होता है जो "आध्यात्मिकता" द्वारा भारतवर्ष में उत्पन्न हो गई है। जब किसी संन्यासी को कुछ काम नहीं होता तब वह "ओम्" शब्द की शरण लेता है। इस प्रकार के उत्साही परन्तु गुमराह मनुष्य और कर ही क्या सकते हैं? उनकी जानकारी बहुत ही कम होती है। सामाजिक उद्धार नहीं, किन्तु व्यक्तिगत उद्धार ही उनका उद्देश्य है। रही राजनीति, उसे तो वे जानते ही नहीं। राजनीति का सम्बन्ध कर, चुङ्गी का भावपत्र (Tariff), श्रेणियों के झगड़े, पद और प्रभुत्व आदि सब सांसारिक बातों से है जिनके चक्कर में संन्यासी पड़ना नहीं चहता। मैं एक बड़े विद्वान् ग्रेजुएट को जानता हूं। वह त्याग-व्रत धारण करके हिमालय पर तीन वर्ष तक यह समझ कर उपनिषदें पढ़ता रहा कि संसार का सारा ज्ञान उन्हीं में भरा हुआ है। तत्पश्चात् वह समझता था कि मुझे इस अध्ययन से पूर्णज्ञान प्राप्त हो गया है और अब मैं दूसरों को ब्रह्म विद्या की शिक्षा दे सकता हूं। इस उदाहरण से स्पष्टतया पता लगता है कि भारतवर्ष की कितनी नैतिक शक्ति नष्ट हो रही है। देश में त्याग का जो वर्तमान आदर्श है वह बहुत ही दूषित है। जिज्ञासु के सामने एक झूठा आदर्श रखा जाता है। सांसारिक चीज़ें समझ कर इतिहास और विज्ञान की बुराई की जाती है। "आध्यात्मिक" नाम का ज्ञान-जिसमें मुक्ति और "ओम्" शब्द के रटने की शिक्षा के सिवाय और कुछ नहीं है "सांसारिक" कलाओं और विज्ञान से अच्छा समझा जाता है। इस प्रकार यह त्याग भारत का कुछ उपकार नहीं करता-उपकार तो दूर रहा-उलटा वह कुपथ में डालता और उसे शक्तिहीन करता है।

"समाधि" अथवा अचेत हो जाना आध्यात्मिक उन्नति का अन्त समझा जाता है।

कितने आश्चर्य की बात है कि अचेत हो जाने की योग्यता बुद्धिमत्ता का चिह्न समझा जाय। यदि किसी व्यक्ति में भावों का प्राबल्य है और बुद्धि की कमी तो उसका बेहोश हो जाना बड़ा ही सहज है। यही कारण है कि स्त्रियां तनिक तनिक बातों में बेहोश हो जाया करती हैं। परन्तु भारत में "समाधि" योग का आठवां दर्जा माना जाता है और केवल परमहंस लोग ही इस पद को प्राप्त कर सकते हैं। धन्य है हम लोगों के भाग्य! कृत्रिम उपायों द्वारा एक अप्राकृतिक और अस्वाभाविक अवस्था की प्राप्ति को ज्ञान का चिह्न समझने की मूर्खता भारतीय दर्शनिकों ही के लिए विशेष रूप से संरक्षित थी। कोई आश्चर्य नहीं यदि पुस्तकें और रसायन-शालायें बुरी समझी जाती हों क्योंकि किसी आदमी को अचैतन्यता प्राप्त करने के लिए किसी विद्या की आवश्यकता नहीं। वाह! वाह! पूर्णज्ञान का क्या आदर्श है!

अमूल्य नैतिक शक्ति के अपव्यय होने का एक ढङ्ग भावपूर्ण उपासना भी है। कितने ही मत ऐसे हैं जिनके अनुयायी राम कृष्ण और अन्य देवताओं की उपासना करते हैं। भक्त लोग बाजा बजाते हुए भजन गाते हैं और इस प्रकार अपने भाव-वेग को बहुत ऊंचा उठा ले जाते हैं। वे प्रभु का नाम लेते लेते प्रेम से रोने और नाचने लगते हैं। वे सारी सांसारिक चिन्ताओं और कर्तव्यों को भूल जाते हैं। आत्मा की यह उन्नति नैतिक बल की सूचक है क्योंकि जो मनुष्य किसी भी विचार के बल से अपनी आत्मा को ऊंचा उठा सकता है उसके आन्तरिक भावों

के अच्छे होने में संदेह नहीं। वह निरा सांसारिक मनुष्य ही नहीं है। उसके स्वभाव में कुछ ऐसे तार अवश्य हैं जिनसे सुन्दर मधुर राग निकालने के लिए उचित रीति से उनके छूने की आवश्यकता है। परन्तु नाच और गान मनुष्य के नैतिक बल के विकास करने के अच्छे उपाय नहीं हैं, क्योंकि इस रीति से हमें एक चैतन्य के बदले हज़ारों निर्बल-चित्त, अदृढ़, हृदयावेग की शृंखला में बद्ध मनुष्यों से मिलना पड़ता है जो किसी भी अच्छे व्यावहारिक कार्य करने के योग्य नहीं। उनके इष्टदेव ही का नाम उन्हें उत्तेजित करता है। वे मामूली समझ से भी हाथ धो बैठते हैं और उनकी उपासना में उनको अच्छे नागरिक बनाने की कुछ भी शक्ति नहीं होती। रहा अर्थ-शास्त्र और राजनीति—ये बेहूदा सांसारिक बातें हैं। इनसे और इष्टदेव से कोई सम्बन्ध नहीं फिर भला भक्त को प्रतिनिधि-सभा से, देश में आने वाले और जाने वाले मालों की बात जानने से, क्या मतलब ? वह अपने उपास्य देव के ध्यान में मग्न रहता है और हर चीज़ में वह उसी को देखता है। वह अपने देवता ही में बिलकुल समा गया है। भारतवर्ष ने ऐसे कितने ही भक्त उत्पन्न किये हैं। उनके चरित्र और कारनामों की एक किताब भी है जो उत्तरीय भारत में बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु शोक ! इस भारी भक्ति से देश का एक भी दुःख दूर नहीं होता। वह उलटी कर्म-क्षेत्र से उन व्यक्तियों को, जिनमें अनुभव शक्ति की विशेष मात्रा होती है, घसीट ले जाती है। इस शिक्षा के बदले कि प्रत्येक दुखी बालक कृष्ण है और प्रत्येक क्लेशित मनुष्य राम है और इन्हीं कृष्ण और राम की उपासना करना मनुष्य का परमधर्म है—उसे उपासना का एक झूठा आदर्श दिखा दिया जाता है। कितने दुःख की बात है कि लोग सदा इधर उधर संसार भर में प्रेम

करने के लिए चीज़ों को ढूंढ़ते फिरते हैं जब कि बिना खोज किये ही वे सब समय में बराबर प्यार करने योग्य एक दूसरे को सहज ही में पा सकते हैं। वे सूर्य और चन्द्र, वृक्ष और पशु, देव और देवियों, मृत वीर पुरुषों और स्त्रियों की पूजा करते रहे हैं और अब भी करते हैं परन्तु वे इस बात को बिलकुल भूल ही से गये हैं कि अपने ही आस पास के भ्रातृ मनुष्यों की सेवा करना ही सर्वोत्तम धर्म है। भक्ति की यह सनक उतनीही हानिकारक है जितनी कि योगियों का योग। कुछ लोग विचार और ध्यान में लिप्त हैं और कुछ गाने और नाचने में। इधर यह होता है और उधर अविद्या, दरिद्रता और रोगादि देश में विजय दुन्दुभी बजाते हुए चले आ रहे हैं।

भारत की नैतिक शक्ति अन्धविश्वास द्वारा भी नष्ट हो रही है। हमारे देशवालों की तीर्थयात्रायें और व्रत आदि की बातें बड़ी भारी नैतिक शक्ति की सूचक हैं। वह देश जो हज़ारों आदमियों को दूर दूर तीर्थ-यात्रा के लिए भेज सकता है—तीर्थ यात्रा भी कैसी जिससे कितने ही फिर लौटते नहीं—वह नैतिक बल से शून्य नहीं समझा जा सकता। बद्रिकाश्रम और अमरनाथ की कठिन और भयानक यात्राओं में भय और मृत्यु को जितना तुच्छ समझा जाता है वैसा तुच्छ उन्हें शायद ही कहीं समझा जाता हो। भक्ति का फल प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से अन्धविश्वास के ये सैनिकगण महावीरों की तरह वीरता प्रकट करते हैं। ये यात्रा हमारे देश के साधारण लोगों के नैतिक बल का परिचय देती हैं और इन्हीं से उनके नैतिक वेग की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु शोक, यह सारा वेग उसी प्रकार नष्ट हो रहा है जिस प्रकार पानी समुद्र में बरस कर नष्ट हो जाता है।

समाजिक और राजनैतिक विचारों की नितान्त शून्यता के कारण लोग अपने आत्मिक वेगों की तृप्ति इन्हीं मूर्खतापूर्ण रीतियों से कर लेते हैं। समाज शास्त्र का पढ़ने वाला जानता है कि धर्म केवल हमारे उच्चभावों का सहायक मात्र है और धार्मिक लोग अपने बाह्य लक्ष्य को बदल कर किसी भी काम में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यदि अवसर दिया जाय तो वह मनुष्य जो बद्रिकाश्रम के दर्शन अथवा गङ्गास्नान के लिए अपने प्राणों पर खेल सकता है-अन्य दूसरे अच्छे कामों में भी बहुत आत्मोत्सर्ग प्रकट कर सकेगा। भारतवर्ष में योग और अन्ध-विश्वास लोगों की सारी नैतिक शक्ति को व्यर्थ की बातों में व्यय कर देते हैं-विज्ञान और सामाजिक उन्नति के लिए कुछ रह ही नहीं जाता।

हमारे देश की नैतिक शक्ति का एक बड़ा भारी भाग छोटे मोटे सामाजिक दोषों के दूर करने में खर्च हो जाता है। इस रास्ते में काम करनेवाले हृदय के सच्चे हैं परन्तु उनके काम करने की रीति ठीक नहीं है। बहुत से उत्साही युवकों ने दीनों में अनाज बांटने और रोगियों की सेवा सुश्रूषा करने का प्रण करके दारिद्र्यव्रत धारण कर लिया है। ये युवक बड़े ही सज्जन और त्यागी हैं परन्तु वे नहीं जानते कि भारत ही में क्या-किसी देश में भी भूख और रोग, दान से दूर नहीं हो सकते। वे अज्ञान में पड़े हुए हैं। ऐसे भी लोग हैं जो मांस और मदिरा के निषेध का प्रचार करते हैं, जाति पांति का झगड़ा उठा देने का यत्न करते हैं और इसी प्रकार के अन्य सुधार के कामों को करते हैं। ये लोग भी भूल करते हैं। वे सामाजिक कुरीतियों के कारणों का पता नहीं लगाते-केवल उनसे उत्पन्न बुराइयों ही को मेटना चाहते हैं। भारतवर्ष का नाश इसलिए नहीं हो रहा है कि

कुछ आदमी मांस भक्षण करते हैं या खान पान में ठीक नहीं हैं परन्तु उसके नाश का कारण केवल उनकी आर्थिक हीनता है। किन्तु हमारे देश के सुधारकों में से शायद ही कोई ऐसा हो जिसने देश की आर्थिक अवस्था पर एक भी पुस्तक पढ़ी हो। इस प्रकार मूर्खता-पूर्ण आदर्श निश्चित किये जाते हैं, व्यर्थ आन्दोलनों की रचना की जाती है और बहुत से नवयुवक गुमराह कर दिये जाते हैं। ज्यों ज्यों मूर्ख अथवा चालाक आदमियों द्वारा इस प्रकार के व्यर्थ आन्दोलनों का जन्म होता जाता है त्यों त्यों उन्नति का समय दूर होता जाता है? सब कुछ किया जाता है–किया नहीं जाता वही जिसकी आवश्यकता है। हर तरह की छोटी २ बुराइयां किसी न किसी "देशभक्त" का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर ही लेती हैं परन्तु असली बुराई जो सबसे बड़ीहै- किसी न किसी तरह लोगों की दृष्टि से बच ही जाती है।

हम लिख कर चुके हैं कि योग, भक्ति, तीर्थ-यात्रा, धर्म-प्रचार और अन्य व्यर्थ आन्दोलन ही भारत की नैतिक शक्ति के अपव्यय के ज़िम्मेदार हैं। हमारे सामने गङ्गा बह रही है किन्तु हम प्यासे ही हैं। यह कैसी बात है कि वह देश जिस के सैकड़ों स्त्री और पुरुष प्रति वर्ष त्याग का व्रत धारण करते हैं ऐसी शोक जनक अवस्था में हो। मध्यकाल में योरप की अवस्था भी ठीक भारत ही की सी थी। वहां भी साधु सन्तों की कमी न थी और उनके होते हुए भी दुर्भिक्ष, रोग, और दासता से वहां वाले सदा पीड़ित रहते थे। तेरहवीं शताब्दी में, सेन्ट फ्रान्सिस और सेन्ट डामिनिक ऐसे नैतिक वीरों ने जन्म लिया और इस बात के होते हुए कि आज वह नैतिक बल में पहले से कम है–आज २०वीं शताब्दी में योरप निवासी पहले से कहीं सुखी हैं। इसका कारण केवल यही

है कि आज योरप में विद्या और बुद्धि पहले से बहुत अधिक है। १३वीं शताब्दी में लोग गिरजों के घन्टे बजाते थे, और पापों से मुक्त होने के लिए भूखे रहते थे। जब प्लेग होता था तब टाट ओढ़ते और शरीर में राख मलते थे, परन्तु आज बीसवीं शताब्दी में ठीक इसके विरुद्ध होता है। लोग अच्छे भोजन करते हैं, उत्तम कपड़े पहिनते हैं, नगर को साफ़ रखते हैं और प्लेगादि बीमारियों का सामना करने के लिए कोरन्टा-इन आदि का बन्दोबस्त करते हैं। इस प्रकार विज्ञान की थोड़ी सी सहायता से आज कल मनुष्य जाति को उससे अधिक सुख प्राप्त होता है जो मध्यकाल की अत्यन्त भक्ति और तपस्या से भी न होता था। राजाओं और शासकों के प्रति ईसाई धर्म के गुरुओं और अधिकारियों के हुक्मनामे सुशासन में उतने सहायक न हो सके जितना कि आज साधारण प्रजा-सत्ताक सम्बन्धी नियमों का पालन और प्रचार है। आज ऐसी बड़ी बड़ी बुराइयां दूर हो गई हैं जिन्हें बड़े बड़े जोशीले उपदेश ज़रा भी न मिटा सके थे। मध्यकाल के सन्तों को काम करने का यथार्थ ढङ्ग ही न मालूम था। सेन्ट फ्रान्सिस ग़रीबों को प्यार करता था। वह उनके दुःख दूर करने के लिए प्राण तक देने को सदा तैयार रहता था। परन्तु उसे मालूम ही न था कि जागीरदारों और धनवानों के अत्याचार ही के कारण दारिद्र्य का चारों ओर राज्य है। इनके अत्याचारों को रोकने ही से ग़रीब लोग स्वतंत्र और सुखी हो सकते थे। फ्रांस की राज-क्रांति के करने वाले लोग नैतिक बल में पादड़ियों से कहीं कम थे, परन्तु उन लोगों ने साधु सन्तों और पादड़ियों से कहीं अधिक संसार का भला किया। इसका कारण यही था कि ये धार्मिक लोग बुद्धिमान नहीं थे और बुराइयों की जड़ पर

कुठार चलाना नहीं जानते थे। पासच्योर और कोच साधू संन्यासी न थे परन्तु उन्होंने धार्मिक संस्थाओं से सम्बन्ध रखने वाली दाइयों से संसार का अधिक ही भला किया क्योंकि उन्होंने अपनी सब शक्तियों को रोगों के उचित रीति से नाश करने के उपायों के ढूंढ़ने में लगा दिया था। इस प्रकार योरप के मध्यकाल का इतिहास हमारे सामने बहुत सी शिक्षाप्रद बातें पेश करता है। उस समय धर्म का खूब दौरदौरा था और साधु सन्तों की भी अधिकता थी परन्तु विज्ञान, अर्थ-शास्त्र और राजनीति से दूर रहने के कारण उनसे कुछ लाभ न था। ज्योंही १८वीं शताब्दी के विद्वानों ने जाना कि धार्मिक रीति और नीति का सहारा ठीक नहीं-आधुनिक योरप प्रार्थनाओं, उपदेशों और पादड़ियों की आज्ञा से मुख फेर कर रसायनशालाओं, राज सभाओं (Parliaments.) और सोशलिज्म (Socialism-समानता के स्वत्व) की उपासना करने लगा। जो फल निकला उससे विदित हुआ कि पुराने ज़माने में नैतिक शक्ति के अपव्यय होने के कारण ही लोग कुरीतियों के पाश से जकड़े हुए थे। वाल्टेर, रूसो, मार्क्स, डार्विन, लावायज़ियर, क्यूवीअर, लैपलेस, फैकसटन आदि विद्वान इतने शुद्ध हृदय के न थे जितने सेन्ट बर्नार्ड, सेन्ट फ्रान्सिस और सेन्ट ज़ेवियर, परन्तु आधुनिक योरप ने उस समय की अपेक्षा जब उसके नेता धार्मिक पुरुष थे-आज रोग दारिद्र्य, अन्याय और अविद्या पर कहीं भारी विजय प्राप्त की है। विजय का कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ-वह अभी जारी है, अन्तर केवल काम करने का ठीक ढङ्ग और ठीक विचारों का है उच्च नैतिक बल का नहीं। एक वीर सेनापति जिसे सैनिक बातों

का ज्ञान न हो–एक साधारण सैनिक से जिसने थोड़ी सी भी सैनिक शिक्षा पाई हो परास्त किया जा सकता है।

राजपुताना के रेतीले नगरों में कौन एक बून्द पानी नष्ट करना चाहेगा? तो भी आज हज़ारों अच्छे आदमी ऐसे हैं जो यदि वे बुद्धिमान होते तो देश की बहुत सेवा करते, परन्तु मूर्खता के कारण उनका अस्तित्व निष्फल और हानिकारक है। नैतिक बल का एक स्रोत निरन्तर बह रहा है। किसी भूमि को वह उपजाऊ नहीं बनाता और न किसी बटोही की प्यास ही उससे बुझती है। यह स्रोत निरन्तर एक ऐसे खारे समुद्र में गिरता रहता है जिसमें व्यर्थ चेष्टाओं की लहरें लहराती हैं। भारतवर्ष के युवको! तुम्हें इन नाशकारी बातों की ओर पीठ फेर लेना चाहिए। तुम्हें जानना चाहिए कि रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, प्राण शास्त्र, मनो–विज्ञान और समाज शास्त्र ही आधुनिक वेद हैं और भूगोल, इतिहास, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि वेदांग हैं। जब तुम्हारा हृदय मूर्खतापूर्ण जीवन की स्वार्थ पूर्ण बातों से घबड़ा जाय तो विज्ञान और समाज शास्त्र की शरण लो और पाश्चात्य दुनियां में जाओ क्योंकि वहां आधुनिक कलाओं और विज्ञान की माता है।

अपने व्यावहारिक जीवन की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने प्राचीन ऋषियों के पदचिन्हों पर चलने की चेष्टा मत करो। भविष्य के लिए ऋषित्व के नये आदर्श स्थापित करो। लोगों को शिक्षा दो कि पुराने देवता मर गये और तीर्थ स्थान भी संसार के अन्य भागों में बन गये हैं। काशी और पुरी का समय था परन्तु अब काशी में भयानक मन्दिर, अधजली लाशों, मोटे सांड़ और मुसटन्डे पुजारियों के

सिवा क्या रक्खा है ? पुरी में विसूचिका और किनारे पर धीरे धीरे टकराने वाली समुद्र की लहरों के अतिरिक्त और क्या है ? अब तुम्हारे तीर्थ पेरिस, जेनेवा, बार्सीलोना, मिलवाकी, थान्नियिया पोलयाना, जेना, हैडलबर्ग आदि हैं। आज कल पृथ्वी पर येही स्थान ऐसे हैं जिनकी ओर सब के हृदय बड़ी उत्सुकता से आकर्षित होते हैं।

भारतवर्ष के युवको ! तुम्हें आधुनिक विचारों से प्रभावित होकर संसार के अन्य देशों के साथ एक पंक्ति में चलना चाहिए। कूप मंडूक बने हुए उस अधकच्ची अस्वादिष्ट रोटी को न खाते रहो जो तुम्हारे पूर्वजों ने बनाई थी और न तुम उसे खाते हुए मिथ्या गर्व से इस बात की झूठी शपथ ही खाओ कि वह तो बड़ी मीठी है। तुम्हारा देश भयानक कुरीतियों से अर्जरित हो रहा है। समाज शास्त्र और विज्ञान के अध्ययन की ओर ध्यान फेरो। देश की सारी शक्ति को उन प्रश्नों के हल करने में लगा दो जिनके हल करने की आवश्यकता है। वेदों की शिक्षा के स्थान में नीति, विज्ञान, अर्थ शास्त्र और राजनीति को समझो, पिथ्या की खोज करो, कल्पित बातों के पीछे मत दौड़ो। आधुनिक समय में पुरानी हिन्दू पुस्तकों पर सान मत धरो।

राष्ट्र की सम्पत्ति का इस प्रकार चारों ओर अपव्यय हो रहा है। यह हृदय-विदारक दृश्य है। भूतकाल की हमारी भूलें हमें बड़ी महँगी पड़ रही हैं। मनुष्य जाति अंधेरे में भटक रही है। जिनके नेत्र हैं वे पथ को सहज ही में देख सकते हैं। परन्तु उनके समान कोई भी अन्धा नहीं जो नेत्र रखते हुए भी रास्ते को देखना नहीं चाहता।

(मर्यादा)

कुछ भारतीय आन्दोलनों पर विचार।

मैं भारतवर्ष के कुछ वर्तमान सामाजिक आन्दोलनों पर विचार करना चाहता हूं। हर एक आन्दोलन से उन्नति नहीं हो सकती। कोल्हू का बैल आगे बढ़ता है, पर वह अपने नियत घेरे के चारों ओर ही घूमा करता है। रास्ते का न जानने वाला एक यात्री यात्रा करने के लिए निकलता है। वह रास्ता भूल जाता है और इधर उधर मारा मारा फिरता है। कुछ आन्दोलन ऐसे भी हैं, जिन से हानि पहुंच सकती है। जिसे सोते सोते काम करने का रोग हो (सोमनाम्बुलिज़्म रोग का रोगी) वह नींद में चल कर छत से नीचे गिर सकता है। पतंगा भी जो आप से आप आग में गिर कर जल जाता है, इसी तरह के हानिकारक आन्दोलन का उदाहरण हो सकता है। इसी प्रकार सामाजिक कामों में हर तरह के आन्दोलन लाभकारक नहीं कहे जा सकते। क्या आन्दोलनों में भ्रमात्मक प्रयत्न, अनुचित जोश और भूलों से भरी हुई चेष्टाएँ नहीं होती हैं? दुःख और विपत्तियों से भरी हुई इस दुनिया में पापों और व्याधियों का सामना करने के लिए जितनी भलाई की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत बुद्धिमत्ता की भी है। युद्ध में जितनी आवश्यकता वीरता की है उतनी ही आवश्यकता युद्ध-कला के ज्ञान की भी है। मनुष्य-जाति की भलाई के लिए किसी काम के आरम्भ करने से पहिले हरएक को इस बात पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए कि कहीं हम ग़लत रास्ते को न ग्रहण करलें और संसार को फिर पहिले से भी ज़ियादा हानि न पहुंचावें?

संसार में आत्मिकबल की मात्रा बहुत कम है। हम भूल से आत्मिकबल का एक कण भी फ़ज़ूल नहीं खोना चाहते। सैकड़ों तरह की विपत्तियां हैं। वे बड़ी ही प्रबल हैं। वे संसार को कुचल रही हैं, संसार का कोई भी देश उनसे बाक़ी नहीं है। दरिद्रता, अकाल-मृत्यु, बीमारियां, नैतिक और सामाजिक कुरीतियां, अज्ञान और दुष्टता आदि ऐसी आफ़तें हैं जिनके मारे पृथ्वी बोझ से दबी सी जारही है। उन लोगों की संख्या बहुत ही थोड़ी है जो इन विपत्तियों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। उन पवित्र आत्माओं की बड़ी ही कमी है जिनका हृदय संसार के दुःखित हृदयों की गति को परख लेता है, और उनका कान उस आर्तनाद को— चाहे यह आर्तनाद पहाड़ में होता हो या घाटी में, मैदान में होता हो या बन में सुन लेता है। और जब हम भारतवर्ष को—उस भारतवर्ष को जो दुर्भाग्य का लाड़ला बच्चा हो रहा है,—उस भारतवर्ष को जो आज तरह तरह की विपत्तियों और व्याधियों का शिकार हो रहा है—देखते हैं, तो हमें पता लगता है कि यहां आत्मिक बल की बहुत ही कमी है। यहां के नैतिक बल का स्रोत सूख गया है और देश नैतिक मौत से मरे हुए लोगों की लाशों से ज़िन्दा क़ब्रिस्तान बना हुआ है। एफ्रिका के सहारा मरुस्थल में ओसिस [पेड़ों के कुंज] बहुत कम और दूर दूर पर हैं। भारतवर्ष में आत्मिक बल रखने वाले आदमियों की संख्या सहारा के इन ओसिसों से भी कम है। और इतनी कम है कि इनकी गिनती उंगलियों पर गिनी जा सकती है। जब यह दशा है तब यह बात ज़रूरी है कि जो कुछ आत्मिक बल हमारे देश में है, उसे हम अंधे हो कर नहीं बल्कि समझ बूझ कर खर्च करें।

यदि संसार का एक भी अच्छा आदमी या स्त्री अच्छे रास्ते से भटक जाय तो वह संसार के लिए एक विपत्ति सिद्ध हो सकती है। केवल काम ही से संसार की सहायता नहीं हो सकती। काम हों पर वे ठीक काम हों। भारत इतना ग़रीब है कि एक एक कौड़ी उसके लिए बहुमूल्य है। अन्य देशों में देशभक्तों और मानवजाति के प्रेमियों के झुंड के झुंड हैं। ये लोग अपने देश का हित सदा सोचा करते हैं। परन्तु भारतमाता अपने कुछ अयोग्य, भीरु और गुमराह बेटे और बेटियों ही पर गर्व कर सकती है। जो कभी कभी उस के भविष्य के विषय में कुछ सोच लिया करते हैं। ऐसी नैतिक गिरावट और बुद्धि की दरिद्रता पर रोटी का एक सूखा टुकड़ा भी किस प्रकार किसी को हाथ उठा कर दिया जा सकता है। विलासिता के लिए एक फूटी कौड़ी का भी खर्च करना कैसे उचित कहा जा सकता है? भारत के सारे युवकों और युवतियों पर बड़ी भारी ज़िम्मेदारी है। उनका कर्तव्य है कि सारी कठिनाइयों पर पूरा पूरा विचार करते हुए अपनी योग्यता और अपनी शक्ति को देश के दुःख दूर करने के लिए लगावें। अब आओ, देखें, उन आन्दोलनों में, जिनकी आज भारतवर्ष में धूम है, कहां तक इन बातों के अनुसार काम किया जाता है। इससे पहिले कि वे बुरे या भले कहे जायं मैं उनमें से दो के ऊपर विचार करता हूं।

(१) नीच जातियों के उठाने का आन्दोलन।

इस बड़े प्रश्न के विषय में, अन्त में, हिन्दुओं के विवेक की जागृति हुई है। यह प्रश्न उन प्रश्नों में से एक है, जिनका उस समय से कोई ख़्याल ही नहीं किया गया, जब से भारत ने भगवान् बुद्ध और उनकी शिक्षा से लज्जित होना सीख लिया

है। आजकल तो इस प्रश्न ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। अब भारत ने उस अस्वाभाविक और नाशकारक जाति-विभेद के विरुद्ध खड्ग धारण किया है जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से, या कम से कम एक हिन्दू को दूसरे हिन्दू से अलग रखता है। जो शक्ति इस संग्राम की तह में काम कर रही है वह सराहनीय अवश्य है। अब लक्ष्य ठीक है। यद्यपि इस आन्दोलन का अभी बचपन ही है, तो भी इसने सच्चाई के साथ काम करने वाले नवयुवकों को अपनी ओर खींच लिया है। अब कोई भी आदमी इस आन्दोलन को बुरा नहीं कह सकता। मैं संसार भर के मनुष्यों को एक दूसरे का भाई समझता हूं। भगवद्गीता और मनुस्मृति में वर्णों का ज़िक्र है। चाहे चारों वेद वर्णों को ब्रह्म या हिरण्यगर्भ के पवित्र शरीरके सिर, हाथ, जंघा और पैर बतलाते रहें पर मैं किसी भी जाति या वर्ण को नहीं मानता।

नीच जातियों के प्रश्न को मैं उन देशभक्त हिन्दुओं की दृष्टि से नहीं देखता, जो नीच जातियों को इसलिए उठाना चाहते हैं कि इस काम से हिन्दुओं की संख्या बढ़ जायगी, या कौंसिलों के निर्वाचन में संख्या की इस वृद्धि के कारण वे मुसलमानों से बाज़ी मार ले जांयगे। न मैं इस बात ही को, जिससे साधारण हिन्दू व्यथित रहते हैं, कुछ महत्व का समझता हूं कि ईसाई धर्म पीछे से हिन्दू क़िले में सेंध लगा रहा है। मैं इस प्रश्न पर केवल एक सहृदय मनुष्य के नाते ही से सारी देशभक्ति, जाति-भक्ति या इसी प्रकार के अन्य ख़्यालात से दूर रह कर विचार करता हूं। नीच जाति का मनुष्य है, और इसलिए, मेरे विचार से वह मनुष्यों के सारे स्वत्वों के पाने और कर्तव्यों के पालन करने का योग्य पात्र है। इसी दृष्टि से मैं इस आन्दोलन को जो एक सच्ची

हुई भेड़ को झुंड में लौटालाने का काम करता है, सराहनीय और अच्छा समझता हूं।

इस विचित्र संसार में सारी चीज़ें वैसी ही नहीं होतीं, जैसी वे दीख पड़ती हैं। हज़ार तरह के आड़े सीधे भलाई बुराई के ताने बाने हमारे जीवन में मौजूद हैं और इसलिए चारों ओर देखने भालने की ज़रूरत है। जीवन के रहस्य साधे सादे नहीं। उसकी भूल भुलैयों के कारण, किसी सामाजिक काम के ऊपर मत स्थिर करना बड़ा ही टेढ़ा काम है।

नीच जातियों के प्रश्न का एक दूसरा अंग भी है। सब से पहिले हमें यह पूछना है कि ये कौन लोग हैं, जो भारत की नीच जातियों को मनुष्यता के समानस्थल पर लाना चाहते हैं और जो उनके हज़ारों वर्ष से खोये हुए समानता के हक़ को फिर वापस दिलाना चाहते हैं। इस का उत्तर यह है कि हिन्दुस्तान के नवयुवकों ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। हम फिर पूछते हैं कि वह सामाजिक समानता किस प्रकार की है जो वे इन नीच जातियों को देना चाहते हैं? उत्तर मिलता है कि वे उन को देश की अन्य जातियों–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य--की बराबरी का हक़ देना चाहते हैं। यदि ऐसा ही है, तो अच्छा है। लेकिन, अब इस प्रश्न का हास्यास्पद अंग आगे आता है कि क्या ये नीच जातियोंके उद्धार करनेवाले लोग स्वयं भी मनुष्यताके समान स्थल पर खड़े हुए हैं? क्या उनको वह मान प्राप्त है जो एक साधारण मनुष्य की शान के लिए ज़रूरी है? वे कहते हैं कि समाज में नीचे गिने जाने के कारण शूद्र लोग अपनी आयु अंधकार और अज्ञान में व्यतीत करते हैं, मानवी स्वत्वों से वञ्चित रहते हैं और इस प्रकार उन्नति करने का अवसर नहीं पाते। परन्तु प्रश्न होता है कि क्या हम लोगों की हालत कुछ

अच्छी है और क्या इन्हें मानवी स्वत्व प्राप्त हैं ? ये ग्रेजुएट, ब्राह्मण, उच्च-जाति वाले, राजा और ज़मींदार कौन हैं जो नीच जातियों का मनुष्यता के भूतल पर बैठाना चाहते हैं ? क्या वे स्वयं भी मनुष्य हैं और क्या संसार का कोई सभ्य मनुष्य उन्हें भी मनुष्य कह सकता है ? वे तो स्वयं संसार की दृष्टि में शूद्र हैं और इस पर भी वे शूद्र जातियों को अपनी 'उच्च' सामाजिक स्थिति में लाना चाहते हैं। क्या वे भी सामाजिक उच्चता की डींग हांक सकते हैं ? सभ्य मनुष्यों की दृष्टि में सारे हिन्दू अति नीच हैं। चाहे वे राजा हों या रईस, पंडित हों या भंगी, सारस्वत हों या नामशूद्र, महामहोपाध्याय हों या चाण्डाल, उनकी इस प्रकार की अवस्थायें उनमें से किसी को मनुष्यता के उच्च स्थान पर नहीं बिठा सकतीं। वे समाज की अति नीच श्रेणी हाटेन्टोज़, जूलू, काफिर, मिश्रियों, ब्रह्मियों या अनामियों के साथ गिने जाते हैं, चाहे वे अपने को रेशम के कीड़े समझें, या घास या मोरी के, इस अन्तर से उनकी हैसियत ज़रा सी भी नहीं बढ़ती।

यह बात बड़ी ही हास्यास्पद, तथा निराशाजनक है कि हिन्दू शिक्षित समाज जिसकी स्वयं दशा अच्छी नहीं, नीच जातियों का ऊपर उठाना चाहता है। यह तो अपने आपको धोखा देना या जान बूझ कर अन्धा बन जाना है। वे समझ बैठे हैं कि शूद्रों के लिए यह बड़ी बात होगी कि वे ब्राह्मणों के साथ भोजन कर सकें या उनसे मिल सकें परन्तु वे भूलते हैं। इससे कुछ लाभ नहीं, इससे तो इतना ही होगा कि एक शूद्र दूसरे शूद्र के बराबर हो जायगा, परन्तु जो खाई इन शूद्रों और नीच जातियों को सभ्य जातियों से अलग करती है, वह उस नाली के मुक़ाबले में इतनी गहरी है कि उच्च और शिक्षित शूद्रों से नीच और गन्दे शूद्रों का मेल मिलाप हो जाने पर

भी उस महान् कार्य्य में जिसकी मनुष्य जाति को ज़रूरत है—कोई भी सहायता न मिलेगी। रेशम का कीड़ा गर्व कर सकता है कि मैं नमकदार हूं, मेरे नाम की हर कहीं चर्चा होती है, मेरे द्वारा बनाई हुई चीज़ से रेशम बनती है, जिसे राजा महाराजा पहिनते हैं, पर यथार्थ में, वह भी एक वैसा ही कीड़ा है जैसा टसर का। यदि टसर का कीड़ा भी शहतूत के पेड़ों पर छोड़ दिया जाय और उसका भी मान वैसा ही होने लगे जैसा कि रेशम के कीड़े का, तो भी वे दोनों मनुष्य-पद को प्राप्त नहीं कर सकते। पुनर्जन्म के आवागमन के सिद्धान्त पर विचार करते हुए कहना पड़ता है कि मनुष्य का चोला पाने के लिए उन्हें नये सिरे से जन्म लेना चाहिए। कीड़ों में वे चाहे जितने अच्छे समझे जाते हों पर उनका मान रेंगनेवाले जीवों से अधिक नहीं हो सकता। शिक्षित हिन्दू नीच हिन्दुओं के उठाने के लिए एक समुदाय बनाते हैं। इसी प्रकार यूरोप के कुत्ते भी एशिया के बाज़ारी कुत्तों को अपने बराबर और इस योग्य बनाने के लिए कि वे भी लेडियों की गोदों में बैठने और पेरिस और लन्दन के धनकुबेरों के कमरों में चहल-कदमी करने का हक़ पा जाएं, एक मंडल बना सकते हैं। नीच जातियों को ऊपर उठानेवाले इन व्यक्तियों से मैं कहूंगा "वैद्यवर! अपनी ही दवा करो"।

यह तो ऐसी ही बात हुई कि संसार के सारे लंगड़े मिल कर लंगड़ों की मदद करें और अंधे अंधों की आखें बनावें। भारत की नीच जातियों में भी बड़े भेद विभेद हैं। प्रथम श्रेणी का चाण्डाल साधारण चाण्डाल से घृणा करता है। यदि ये चाण्डाल लोग अपने आपस में सामाजिक समानता क़ायम करने के लिए एक सभा का सङ्गठन करें, तो भारत के सुधारक लोग क्या कहेंगे। वे यही कहेंगे कि सभा बुरी

नहीं, कुछ न होने से कुछ होना अच्छा ही है। परन्तु इन चाण्डालों में चाहे समानता पैदा हो जाय, पर क्या इन्हें मन्दिरों में पैर रखने का, कुओं में पानी भरने का, पाठशालाओं में शिक्षा पाने का हक़ मिल जायगा ? यदि प्रतिष्ठित हिन्दू को मनुष्यता के सामाजिक बाज़ार का रुपया मानलें, तो चाण्डाल फिर भी तांबे का खोटा पैसा ही रहेगा। और कोई सर्राफ़ उसे अच्छे पैसे के स्थान में लेने के लिए कदापि तैयार न होगा। अतएव शुद्धि सभाओं का बनाना नैतिक बल का व्यर्थ खर्च करना है। इस बल को असमानता के प्रश्न के हल करने में बड़े पैमाने में लगाना चाहिए था, जिससे इसके बजाय कि नीच श्रेणी के चाण्डाल प्रथम श्रेणी के चाण्डालों के बराबर हो जायँ, सारे चाण्डाल हिन्दुओं की बराबरी के हो जाते। यह बात ठीक है और मैं इन सुधारकों से कहता हूँ कि तुम वर्त्तमान समय के हिन्दुओं को, जिनकी बराबरी का तुम शूद्रों को बनाना चाहते हो, मनुष्य समाज रूपी बाज़ार के चलते हुए सिक्के समझने में बड़ी भारी भूल करते हो। प्रतिष्ठित हिन्दू एक घिसा हुआ 'सिक्का' है और आज संसार के बाज़ार में उसकी कोई पूछ नहीं। सामाजिक असमानता का प्रश्न इस प्रकार हल हो सकता है कि सारे हिन्दुओं को — चाहे वे द्विज हों या चाण्डाल—संसार की सभ्य जातियों की बराबरी के दर्जे पर घसीटा जाय। इन शुद्धि-सभाओं में शक्ति और रुपया खर्च करना व्यर्थ है। जब सारा भारत नीच जातियों से भरा हुआ है तब यह फ़ुज़ूल है कि कुछ निम्न श्रेणी के नीचों के उठाने की ओर चित्त दिया जाय।

(अभ्युदय)

(२) शिक्षा।

आज कल बहुत से विद्वान अपने अपने शिक्षा सम्बन्धी प्रस्तावों को लेकर आगे बढ़े हैं। शिक्षारूपी आकाश में मिसेज़ बिसैंट, मि० मालवीय और मि० गोखले आज कल खूब चमक दमक रहे हैं। साथ ही, फर्गुसन कालेज, दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज, गुरुकुल आदि पुराने तारागण भी अपने नियत क्षेत्र के भीतर चक्कर मार रहे हैं। मालवीय जी ने जो हिन्दू विश्वविद्यालय का बड़ा भारी प्रस्ताव किया है, उसे सर्व-साधारण से कुछ सहायता मिली है। यह आरम्भ अच्छा है। लेकिन हमें विचार करना चाहिए कि क्या हमारे देश वालों को ऐसी संस्थाओं से लाभ हो सकता है? मालवीय जी का कहना है कि इस विश्वविद्यालय से हिन्दुओं में ऐक्य-भाव बढ़ेगा और 'हिन्दू धर्म्म' की रक्षा होगी। इस में 'धार्म्मिक शिक्षा' पर विशेष ज़ोर दिया जायगा। प्रास्पेकटस में हर तरह की शिक्षा—वैज्ञानिक औद्योगिक, शिल्प सम्बन्धी आदि—का ज़िक्र है। नई तजवीज़ के आगे बढ़ाने के लिए इन सब बातों का होना ठीक ही है। आओ, हम जांचे कि हमारे युवक इन उपायों के अनुसार काम करते हुए उन्नति के शुभ पथ में कहां तक आगे बढ़ सकते हैं?

पहिले तो यही प्रश्न होता है कि 'धार्म्मिक शिक्षा' है क्या? मुझे आज तक मालूम न हो सका कि हिन्दुत्व किसे कहते हैं? ईश्वर-वादी लोग यह मानते हैं कि ईश्वर है, लेकिन हम यह न जान सके कि वह कैसा है? बहुत से आदमी 'हिन्दुत्व' के विषय में ऐसा ही मत रखते हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय के सञ्चालकों का कहना है कि वही सिद्धांत सिखाये जांयगे, जिन्हें हिन्दुओं के सब पंथ मानते होंगे। मेरा विश्वास है कि जब इन रत्नों के लिए हिन्दू शास्त्रों का

समुद्र मथा जायगा, तब उस में से इन सिद्धांतों के रूप में कुछ निरी मामूली प्रचलित स्वयं-सिद्ध बातें निकल आवेंगी। लेकिन क्या हमें विश्वविद्यालय में सत्य की शिक्षा देनी चाहिए या कुछ थोड़े से ऐसे विचारों की, जिन्हें सब हिन्दू मानते हैं? यदि हमें धर्म्म की शिक्षा देनी ही है, तो इस की अपेक्षा कि हम २५ करोड़ हिन्दुओं की, जिनमें बहुदेव-वादी, अद्वैतवादी, आस्तिक, नास्तिक आदि की कमी नहीं है और जिनके मतों का यदि विभाजन किया जाय, तो मतों का एक अजायब-घर ही क़ायम हो जाय— पूर्ण-तया मानी हुई बातों पर ज़ोर दें, हमें सत्य की शिक्षा पर अधिक ज़ोर देना चाहिए। फिर क्या भारत के भावी नेता सदा पुराने हिन्दू ख़यालातही का पागुर किया करेंगे? क्या वे ख़ुद कुछ सोचने का साहस न करेंगे? क्या सारी धार्म्मिक सच्चाइयां और आदर्श हिन्दुओं के उपनिषद आदि धर्म्म ग्रन्थों ही में बन्द हैं? धार्म्मिक-शिक्षा की यह लटपटी बाणी ऐसे आदमियों के मुंह से सुन कर बड़ा ही दुःख मालूम होता है, जिन की नज़रों में धर्म्म आत्म-संरक्षण का पथिल प्रकाश नहीं है, किन्तु जो धर्म्म को एक गिरी हुई निर्जीव जाति में जातीय एकता के नाम से पुकारी जाने वाली एकता या जत्थों के झगड़ों के मिटाने का उपाय समझते हों। हम बहुत से आदमियों को जानते हैं जो हम से चारों वेद के सामने सिर झुकाने को कहते हैं क्योंकि सारे हिन्दू ऐसाही करते हैं। वे ऐसा करना बिना किसी शंका के हिंदुत्व का एक सर्व-स्वीकृत सिद्धांत मानते हैं। मैं सत्य और उन्नति के नाम पर इस धार्म्मिक भकैती का विरोध करता हूं। हम नहीं चाहते कि हमारे बच्चों को हिन्दुत्व के भाण्डार की यह फफूंदी लगी हुई रोटी का टुकड़ा खिलाया जाय, जो हिन्दुओं के ये नये जोशीले भांडारी

उनके सामने रख रहे हैं। चाहे इन मानसिक बेड़ियों के सिवा, जो एकता के चिन्ह सदृश धारण की जानी चाहिए, कोई और दूसरा उपाय ऐसा न भी हो जो हिन्दुओं को एकता के सूत्र में बांध सके, तो भी हम नहीं चाहते कि हमारे युवक और युवतियां कृत्रिमता और आध्यात्मिक आलस्य में पाले पोषे जांय। इस कीमत पर एकता ख़रीदने के योग्य वस्तु नहीं है। क्या इस तरह की 'धार्मिक' शिक्षा प्रति दिन हज़ारों पुरोहितों और फ़कीरों द्वारा नहीं दी जाती? अभी भारत में इस तरह की शिक्षा की कमी नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि भारत का हर एक हितेच्छु इसके बजाय कि वह सारे संसार की एकत्रित सम्पत्ति में हाथ डाले, संस्कृत के दीवालिये ख़ज़ाने ही की छान बीन में लग जाता है। वैदिक सूत्रों पर लड़ झगड़ कर और शाम सवेरे मंत्रों का उच्चारण करके भारत का उद्धार करना लोगों ने बड़ा ही सहज समझ रक्खा है। लेकिन सामाजिक समता और आत्म-गौरव, वैज्ञानिक खोज और तर्क-सिद्ध मत, परिमित व्ययी स्वाधीनता और संघ, सार्वजनिक भाव और सामाजिक उन्नति के भावों का पैदा करना बड़ा कठिन है। 'धार्मिक शिक्षा' के नाम पर इन युवकों को सिखलाया क्या जायगा? मैं समझता हूं कि उन्हें वेदों का सम्मान करना सिखलाया जायगा, जिन्हें वे चाहे पढ़ भी न सकें। उन्हें यह सनातन अंतर याद कराया जायगा कि श्रुति दैवी है और स्मृति मनुष्य कृत, उन्हें चार वर्ण समाज के चार खम्भे बताये जायंगे, और देवताओं और देवियों की उपासना सिखाई जायगी, इत्यादि। मैं उन्नति-शील भारत से सच्चाई के साथ पूछता हूं कि क्या यह धार्मिक शिक्षा का भाड़े पर लिया हुआ 'शिक्षा-क्रम' अब फटे हुए चिथड़े की

तरह नहीं होगया है ? हम चाहते हैं कि भारतके भावी निर्म्माता आधुनिक आचार्य्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करें, वे संसार भर के परम बुद्धिमान लोगों से ज्ञान सीखें, वे धर्म्म की ओर तर्क-सिद्ध मन और व्यक्तित्वके आधुनिक ढंग से बढ़ें, और इस तरह अपने लिए दृढ़ और मौलिक मत स्थिर करें। उनके मनों में अवैज्ञानिक और काल्पनिक बासी विचारों के ठूसने से फायदा ही क्या ? सत्य के स्थान में उन्हें झूठ और सच की खिचड़ी, बेतुकी और गड़बड़ बातों से भरे हुए शास्त्रों की उस शिक्षा से जिस से वे अपने देश वालों के भाग्यों का निर्म्माण करेंगे, भलाई ही क्या ? क्या ऐसे मल्लाह अपनी नाव को कभी पार लगा सकेंगे ?

फिर, इन के समाज के विषय में क्या विचार होंगे ? क्या वे मनु की स्मृति को सब कुछ समझ बैठेंगे और ऐसे समय में उसी की सहायता से हिन्दुत्व की रक्षा करेंगे ? यह कितने दुःख की बात है कि अब सारा संसार तो आधुनिक आचार्यों के बुद्धि-बल से उत्पन्न ताजे और पोषक भोजन को पा रहा हो, उसी समय हमारे भूले भटके हिन्दू युवक अपने नेताओं के कारण ब्राह्मण, गृह-सूत्र मनु-स्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति ऐसे ग्रन्थों में अच्छे और पोषक पदार्थ ढूंढते हुए नज़र आवें। ये लोग विक्रम की इस बीसवीं शताब्दी में विक्रम से बीस शताब्दी पहिले के बचे खुचे माल पर जीवन सेर करना चाहते हैं। संस्कृत का कोई भी ग्रन्थ हमारे युवकों को नहीं बता सकता है कि आज समाज का संगठन किस तरह होना चाहिए ? यदि सच्चे सामाजिक सिद्धान्त प्राचीन ग्रन्थों से सीखे जा सकते हैं, तो फिर काशी के पण्डितों ही को सब से बुद्धिमान समझो और फिर वेही नवीन भारत के नेता हो सकते हैं। लेकिन कौन ऐसा मूर्ख होगा जो

भारत के भविष्य को काशी और नदिया के पण्डितों के हाथों में सौंप देगा। हमें सदा पीछे देखने के बजाय आगे देखना चाहिए। नये अवसर नये कर्तव्यों की शिक्षा देते हैं। समय के परिवर्तन से प्राचीन बातें फ़ज़ूल हो जाती हैं। जो सत्य के साथ सदा रहना चाहते हैं उन्हें सदा आगे बढ़ते रहना चाहिए। फिर धर्म्म की शिक्षा ही सब कुछ नहीं है। सामाजिक आदर्श होने चाहिएं। एक आदमी ब्रह्म और पुनर्जन्म पर विश्वास कर ले, लेकिन उसे राष्ट्रीय प्रश्नों, आर्थिक व्यवस्था, विवाह, स्त्रियों का पद, जातीयता, समाज के मुक़ाबिले में व्यक्ति के हक़, आदि बातों के विषय में भी ज्ञान होना ज़रूरी है।

आज कल एक आदमी के लिए केवल आस्तिक, या अद्वैतवादी, वेदान्ती या सांख्य-शास्त्र का मानने वाला होना ही काफ़ी नहीं है। उसे राष्ट्र के विषय में भी कुछ मत स्थिर करना होगा कि वह परिमित राज-सत्ता चाहता है, या स्वेच्छाचारी राज-सत्ता, उसे प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र पसन्द है या धार्मिक लोगों द्वारा सञ्चालित राष्ट्र, इत्यादि। फिर उसे स्त्री, तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, और पारस्परिक स्वत्वों और कर्तव्यों और साथही संसारकी आर्थिक व्यवस्था पर अपना मत स्थिर करना होगा। आधुनिक सभ्यता में बड़ी गुत्थियां हैं। आज बहुत से प्रश्न ऐसे उपस्थित हैं जिन का भूतकाल के हिन्दू शास्त्रकारों ने स्वप्न में भी ख़्याल नहीं किया था। अब प्रश्न होता है कि इन प्रश्नों पर हिन्दू विश्वविद्यालय क्या शिक्षा देगा? क्या हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मनु की बताई हुई आठ मंत्रियों की राज-सभा का चर्खा सदा ही चल सकता है? क्या हमारे युवक यह सीखेंगे कि स्त्री को कभी स्वतन्त्रता न मिले? (न

भजत ओं स्वतन्त्रा—मनु)। क्या वे आधुनिक प्रतिनिधि सत्तात्मक राष्ट्र से इसलिए आखें मूंद लेंगे कि हिन्दू-काल में तो वह था ही नहीं? शिक्षा से मनुष्य अपने जीवन के कर्तव्यों के पालन करने में समर्थ होता है। वह युवक किसी काम का नहीं, जिस ने अपने धार्मिक और राजनैतिक मत स्थिर नहीं किये। शिक्षा उसे बड़े प्रश्नों पर दृढ़ मत स्थिर करने के योग्य बना सकती है। क्या मालवीय जी के कार्य्यक्रम से ऐसा होने की आशा है?

इस विश्वविद्यालय में किस तरह की राजनीति की शिक्षा दी जायगी? भारत में कितने ही राजनैतिक दल हैं। भारतीय युवक को इन दलों में से किसी एक में होना चाहिए। यह विश्वविद्यालय किस दल की राजनीति सिखावेगा? यदि वह राजनीति से तटस्थ रहा, तो उसका होना न होना बराबर है। मालवीय जी बतावें कि विश्वविद्यालय का किस दल से सम्बन्ध होगा? इस समय 'जातीय हिन्दू विश्वविद्यालय' बन ही नहीं सकता। राजनैतिक प्रश्न ऐसे होते हैं कि उनके कारण पिता और पुत्र को एक दूसरे के मुक़ाबिले में आ जाना पड़ता है। इसलिए इसे कुल हिन्दुओं का विश्वविद्यालय कहना फज़ूल है। यह जाति के एक भाग का कहा जा सकता है, क्योंकि कुल जाति न तो राजनैतिक और न धार्मिक प्रश्नों ही पर एक मत है। क्या यह विश्वविद्यालय लन्दन के 'टाइम्स' की तरह कपट, ज़िद, कट्टरपन और राजनैतिक सङ्कीर्णता सिखाने के लिए स्थापित होगा? या यह उन्नति और ज्ञान का प्रचार करेगा? सत्य ही सच्चा प्रकाश है। हमें पहिले सत्य चाहिए, पीछे एकता। असत्य, बन्धन और मृत्यु की अवस्था में भी एकता होसकती है, लेकिन ऐसी एकता की हमें ज़रूरत नहीं। सत्य से पहिले झगड़े

फ़साद हो सकते हैं लेकिन सच्ची एकता सत्य ही के आधार पर टिक सकती है। धर्म हो या समाज, सब में सत्य की ज़रूरत है और फिर एकता तो आप से आप आ जायगी। जो सत्य को प्यार करते हैं, वे हमारे साथ हैं। जो उस से घृणा करते हैं, वे हमारे विरोधी हैं, चाहे फिर वे हमारे माता, पिता या सम्बन्धी ही क्यों न हों। संसार हिन्दू और मुसलमान, हिन्दुस्तानी और अंगरेज़ी, पूर्वीय और पश्चिमीय दलों में नहीं बंटा है, वह केवल दोही दलों में बंटा है। एक है सत्यका प्रेमी और दूसरा है उसका विरोधी। इसके पहिले कि भारत फले फूले, उसे सत्य के आरे पर चिर जाना चाहिए। 'हिन्दू' 'मुसलमान', 'गोरे' और 'काले' की पुकारें अर्थ-हीन हैं। 'हिन्दू विश्वविद्यालय' के नाम से कुछ भी पता नहीं चलता कि वह किसतरह का विश्वविद्यालय होगा। उसे साफ़ साफ़ प्रकट कर देना चाहिए कि उस के धार्मिक और सामाजिक सिद्धान्त क्या होंगे, जिससे पता चल सके कि वह किस तरह के आदमी पैदा करेगा।

मैंने इन प्रश्नों को अपने युवकों और युवतियों को गुमराह होने से बचाने के लिए आगे रक्खा है। मैं अभी धर्म और समाज पर कोई मत प्रकट नहीं करना चाहता। इस लेख से मेरा मतलब अपने विचारों को प्रचार करने का नहीं, किन्तु एक महत्व-पूर्ण प्रश्न को भारत की उठती हुई सन्तानों के सामने रखनेका है। 'हिन्दू', 'जातीयता', 'एकता' और 'उन्नति' शब्द के बहाव में हमें बह न जाना चाहिए। हमें सत्य की खोज करना चाहिए और उसी को सब बातों की कसौटी मानना चाहिए। 'हिन्दुत्व' या 'उन्नति' के नाम पर चलाए हुए किसी काम में हमें अपनी शक्तियां उस समय तक न ख़र्च करनी चाहिए जब तक हम यह न जानलें कि हां, इस काम

की देश को और काम से ज़्यादा ज़रूरत है। रातके चौकीदार की तरह मैं सब युवकों से कहता हूं "जागते रहना, रात अंधियारी है। रास्ते में बड़े विघ्न और बाधायें हैं। अविश्वास, भ्रम और उदासीनता के बादल सत्य चन्द्र को हमारे अश्रु-पूर्ण नेत्रों से छिपाये हुए हैं। भारत के युवकों और युवतियो! तुम्हारे चारों ओर अन्धकार है। इस में तुम्हारे गुमराह हो जाने का बड़ा डर है। इस अन्धकार-मय निशा में सत्य तुम्हारा प्रकाश सिद्ध हो! सत्य के प्रकाश से तुम कभी सुपथ से नहीं भटक सकते।"

या निशा सर्व्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

भारतवर्ष और संसार के आन्दोलन।

बीसवीं शताब्दी में संसारभर के सभ्य देशों का रूप पलट जायगा। भारत संसार से बाहर नहीं। सदियों तक संसार से अलग रहने की वजह ही से भारत को इतना नीचे गिरना पड़ा। अलग रह कर उन्नति हो ही नहीं सकती। उन्नति के लिए अखाड़े ही में कूदना पड़ता है। संसार के साथ चलने के लिए जिन बातों की ज़रूरत है, अभी उनका भारतवर्ष में कहीं पता ही नहीं। ज़रूरत है कि हम अपनी मानसिक दृष्टि को बढ़ायें और यूरोप के आन्दोलनों से सम्बन्ध रक्खें। इसके लिए हमें ये बातें करनी चाहिएं:—

(१) हमारे नौजवान विदेशी भाषा सीखें। अङ्गरेज़ी एक अच्छी भाषा है, लेकिन संसार भर की वही एक भाषा नहीं है। फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश और इटालियन भाषाओं के सीखने की भी ज़रूरत है। यूरोप के लगभग सभी देश फ्रेंच भाषा बोलते हैं। इस में नये नये आविष्कारों की पुस्तकें भी

अच्छी अच्छी हैं। दुःख की बात है कि भारतीय युवक को यूरोप की यात्रा करने में फ्रेंच भाषा न जानने की वजह से गूंगे और बहरे की तरह रास्ता काटना पड़ता है। जर्मन साहित्य वैज्ञानिक पुस्तकों से भरा पड़ा है। विज्ञान की उन पुस्तकों में से बहुत सी जो इङ्गलैंड में पढ़ाई जाती हैं, जर्मन भाषा से अनुवादित होती हैं। लन्डन का रास्ता जान या नाप कर ही हमारे 'नेता' इस बीसवीं शताब्दी में शिक्षक और दीक्षक बन बैठते हैं। वे अपने को राजनीतिधुरन्धर समझते हैं, परन्तु उन्हें इस बात का कुछ पता ही नहीं कि आजकल के यूरोप में कौन कौन से बड़े आन्दोलनों की धूम है? स्पेनिश भाषा का जानना भी उनके लिए ज़रूरी है जो दक्षिण अमेरिका के राज्यों का हाल जानना चाहते हैं। आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और हार्वर्ड के विश्वविद्यालयों की बासी तिवासी शिक्षा से काम न चलेगा। वर्तमान भारत यूरोपीय जीवन के स्रोत जेनिवा, पेरिस, रोम और बर्लिन में गोता लगाये बिना तेज़ी से आगे बढ़ ही नहीं सकता है। हमें अपने युवकों को इंगलैंड भेज कर रुपया ख़राब न करना चाहिए। हमारे बेसमझ ग्रेजुएट लोग ही उस देश को उन्नति की साक्षात् मूर्ति समझते हैं। यथार्थ में वह एक बड़ा ही पिछड़ा हुआ देश है। गुरुकुल, बंगाल का नेशनल कालेज आदि जातीय संस्थाओं को यूरोप की अन्य भाषाओं की शिक्षा का काम अपने हाथों में लेना चाहिए। उत्तरीय भारत के विद्यार्थी को चाहिए कि अब वह फ़ारसी को दूर से नमस्कार कर ले। फ़ारसी से भारत को लाभ ही क्या? उसका स्थान अब फ्रेंच, जर्मन और इटेलियन भाषाओं को मिलना चाहिए। हाँ हिन्दुस्तानी हमारी भाषा है और उसे हमें अवश्य पढ़ना चाहिए। कितने ही भारतवासी विदेशों में संस्कृत की विशेष

योग्यता बढ़ाने जाते हैं। भारत में अच्छे अच्छे संस्कृतज्ञों की कमी ही क्या है ? हमें अपने इन युवकों को यूरोप की भाषायें सीखने और इस तरह उन्हें यूरोप और भारत में सम्बन्ध पैदा करने के लिए तैयार करना चाहिए।

(२) भारतीय युवक इस समय इङ्गलैंड और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। उन्हें फ्रांस और स्विट-ज़र्लैंड के विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाना चाहिए। मिश्री, तुर्की, चीनी और जापानी विद्यार्थी इन्हीं देशों के विश्व-विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं।

(३) ऊंच जातियों को पुरानी लीक पीटना छोड़ना चाहिए। हमारे रीति रिवाज, जिन पर बहुत से कम-अक्ल जातिहितैषी इसलिए गर्व करते हैं कि वे जातीय चिह्न हैं, यूरोप और भारत के बीच में रोड़े सिद्ध हो रहे हैं। हरिद्वार और पुरी की यात्राओं की ज़रूरत नहीं। हमें यूरोप के यात्री बनना चाहिए। पारसी लोग ऐसा कर चले हैं। लेकिन और लोग इसे उस समय तक न कर सकेंगे जब तक वे अपना पुराना रास्ता न छोड़ेंगे। कुछ लोग ख्याल करते हैं कि भारत के भूत और भविष्य का गठ-बन्धन 'धोती', 'दाल', और 'मैले आंगन' ही से हो गया है। हमारे कुछ देशवासी सोच बैठे हैं कि संसार भर में भारत ही एक ऐसा देश है, जिसमें धर्म रह गया है। उन्हें हर चीज़ की प्राचीनता पर गर्व है। ये बातें उन्हीं के लिए रहने दो, जो 'गुलाम' कहलाते हों। उनके मुंह से जिन्हें लाखों आदमियों के संहार करने वाले महासंग्राम में समय की टेढ़ी चाल का मुकाबला करना पड़ता है, ये बातें ज़रा भी शोभा नहीं देतीं। हां, अगर लोग अपने को भारतीय ज़नाना चहार-दीवारी के भीतर बन्द कर लें, तो भले ही उन्हें इस बदलने वाले ज़माने की सख़्तियों की आंच न

मालूम पड़े और वे अपने दिमागों के बल से गंगोत्तरी या हिमालय के पास बैठे हवाई महल बनाते रहें। सड़े गले ख़्यालात के मुताबिक़ चलने के बजाय हमें अब संसार को सभ्यता की सब से नई पोशाक में देखना चाहिए। जापान ने ऐसा ही किया। उस ने गड़े हुए मुर्दे क़ब्रसे नहीं उखाड़े। भारत के सच्चे काम करने वालों से मैं कहता हूं, "आगे देखो और बाहर देखो, पीछे और भीतर मत देखो।" अमीरों के लड़के और लड़कियों को विशेष शिक्षा के लिए यूरोप जाना चाहिए। यह ग़लत है कि फ्रांस और स्विटज़र्लैंड में पढ़ने से अधिक खर्च पड़ता है। भारत के सरकारी कालेजों में जितना ख़र्च पड़ता है, इन देशों में उतने से अधिक न पड़ेगा। हज़ारों ग़रीब रूसी विद्यार्थी इन देशों में पढ़ते हैं।

हमारे नेताओं को हमारे समाज के जीवन को यूरोपीय समाज के आदर्शों पर मांड़ना चाहिए। चरित्र का सुधार मेशीन से नहीं हो सकता। हमारे देश के बड़े आदमी सच-मुच बड़े आदमी उस समय तक नहीं हो सकते, जब तक वे अपने चरित्र का सुधार नहीं करते। संतोष की बात है कि काम हो रहा है। पुराना ढंग बदल रहा है और नई बातों को स्थान मिल रहा है।

(.) भारत की उन्नति के लिए सामाजिक आदर्शों और आन्दोलनों के विषय का अध्ययन बड़ा ही ज़रूरी है। हमारे देशवाले अध्यात्मविद्या के अच्छे जानकार हैं, पर उन्हें समाज-शास्त्र का कुछ भी ज्ञान नहीं। यूरोप में आज जितने ख़्यालात ज़ोरों पर हैं, उन सबका सम्बन्ध समाज-शास्त्र से है। मतमतान्तरों के झगड़ोंके दिन गये। अब तो समाज, शासन, स्त्रियों आदि के सम्बन्ध के प्रश्नों के मनन करने का ज़माना है। भारत वैसा ही लकीर का फकीर बना है। उसका यह ढंग

उस समय तक न बदलेगा जब तक उसके युवकों और युवतियों को पेरिस और जेनिवा की जीवन संचारिणी वायु न लगेगी। यूरोपीय विचारों की शिक्षा ही उसकी सुस्ती, बे-अक़्ली, उदासीनता और कमज़ोरी को दूर करेगी। भारत में बड़े बड़े विचारों वाले आदमी कैसे उपज सकते हैं, जब हमारे अच्छे से अच्छे आदमी पुरानी पुस्तकों के कुचले हुए मुर्दा ज़माने ही के स्वप्न देखा करते हैं। जीवन जीवित ही से प्राप्त हो सकता है। मुर्दे से मौत मिल सकती है। यूरोप जीवित है और भारत अधमरा। यूरोप से अमृत लेकर हमें भारत को ज़िन्दा करना चाहिए। भारतीय कालेज में समाज शास्त्र की पढ़ाई होनी चाहिए। रूस इसी पढ़ाई से आगे बढ़ रहा है। धार्मिक पक्षपात और अंधकार के जंगल से ज्ञान और स्वाधीनता के पाने का कोई रास्ता नहीं। भारत समाजोन्नति के नये क़ानूनों की रचना नहीं कर सकता। उसे सामाजिक आन्दोलनों की सार्वभौमिक शक्तियों को समझना चाहिए। कालचक्र भारत के सिर पर खड़ा हुआ कह रहा है "मेरे कहे अनुसार चल, नहीं तो मैं तुझे पीस डालूंगा।" नवीन भारत को उत्तर देना चाहिए, "काल-चक्र! मैं तुझे अच्छी तरह समझता हूं। मैं केवल तेरे कहे अनुसार ही न चलूंगा, बल्कि मैं इस तरह चलूंगा कि तुझे मेरी उंगलियों के इशारे पर नाचना पड़े।

(अभ्युदय)

महापुरुष ।

महापुरुषों के वाक्य जाति की चिरस्थायी सम्पत्ति है। उनके चरित्र जाति के युवकों के सामने उचित मार्ग पर चलने के लिए उच्च आदर्श पेश करते हैं। उनके विचारों को जीवित रखना जाति का परम कर्तव्य है।

संसार में दो प्रकार के महापुरुष होते हैं, एक वे, जो किसी विचार की धुन में चल पड़ते हैं और उसके प्रचार में मस्त होकर सारे संसार को भूल जाते हैं। वे जान बूझकर अपने जीवन को सङ्कीर्ण और अपूर्ण बना लेते हैं। उच्च आदर्श के अनुसार उनका जीवन प्रशंसा के योग्य नहीं होता, क्योंकि वे अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों को पूर्ण रूप से बढ़ने नहीं देते। वे अपनी मानसिक उन्नति को तुच्छ समझते हैं। शरीर की ओर से तो बिलकुल उदासीन हो जाते हैं। सभा और समाज के नियम, सभ्यतापूर्वक बातचीत करने के ढंग, सांसारिक व्यवहार का अनुभव आदि बातें उनके लिए कोई आदरणीय वस्तु नहीं हैं। वे नंगधड़ंग पागल उजड्ड तथा असभ्य बन और संसार से अलग रहकर लोगों के पथ-प्रदर्शक बनते हैं। सदा उन्हें एक ही विचार की लौ लगी रहती है, जिसे वे हर समय हर मनुष्य तक पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं। जीवन के दूसरे अङ्गों के विषय में पूछो तो उन्हें तनिक भी उनका पता नहीं। वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियां जाति को एक ही मार्ग दिखलाने में ख़र्च कर देते हैं। जाति बड़ी बन जाती है परन्तु वे स्वयम् छोटे रह जाते हैं। वे जाति के लिए दीपक बन जाते हैं परन्तु स्वयम् मनुष्य नहीं रहते, कुछ और ही हो जाते हैं। कोई उन्हें पागल कहता है और कोई साधू।

आधा संसार उनपर हंसता है और आधा उनकी पदरज को पवित्र समझ कर सिर पर चढ़ाता है।

यह तो उन महापुरुषों का हाल है जो अपना सारा जीवन किसी एक सच्चाई के प्रचार में बिता देते हैं। वे उस ताड़ के वृक्ष की तरह होते हैं जो सीधा जाता है। न उसमें छाया होती है और न फूल। वह केवल आकाशसे बातें करता है। उसकी चोटी को देखकर मनुष्य मूर्छित हो गिर पड़ता है। इस प्रकार के महापुरुष सदैव संसार से अलग, नैतिक धुन में लगे रहते हैं। उनसे मिलकर साधारण मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु लाभ नहीं उठा सकते। उनको सभा, समाज, उत्सव, विवाह, मेला, त्योहार इत्यादि का शौक नहीं होता। वे सबके कृपालु और सहायक बन सकते हैं परन्तु किसी के मित्र या लंगोटिये यार नहीं। वे दस आदमियों में बैठकर बातें भी नहीं कर सकते। क्योंकि जहां ज़रा किसी बात ने उनके विचारों को एक निश्चित मार्ग से हटाया और उनका मन विचलित हुआ।

दूसरे प्रकार के महापुरुष ताड़ के वृक्ष के अनुसार नहीं, वरन बरगद के वृक्ष के सदृश होते हैं, जिसकी शाखाओं में पक्षी बसेरा करते और जिसकी छाया से पथिक सुख उठाते हैं। जिसकी ओर देखकर दृष्टि आकाश तक नहीं पहुंचती वरन् पत्तों ही में रह जाती है। सूरज की चमक से चौंधयाई हुई आँखों को हरियाली से शीतलता प्राप्त होती है ऐसे महापुरुष संसार में रह कर और लोगों के सुख और दुःख, आनन्द और शोक में शामिल होकर घरबार के कर्तव्यों को पूरा करते हुए संसार के सामने व्यावहारिक धर्म का नमूना रखते हैं। वे अपने प्राकृतिक भावों को नहीं मारते।

वे प्रेम के रक्त को नहीं बहाते फिरते। वे मानुषिक विशेषताओं और गुणों को नमस्कार करके विचार को मूर्ति बनने की कोशिश नहीं करते। परन्तु दूसरे भाइये की तरह जीवन-मार्ग में प्रवेश करके इस प्रकार रहते हैं जैसे पानी में कमल। काम वैसे ही करते हैं, जैसे उनके पड़ोसी, परन्तु उद्देश्य का फ़र्क होता है। स्वार्थपरता नहीं वरन् परोपकार और कर्तव्य-परायणता उनके जीवन का लक्ष्य होती है।

महापुरुषों के जीवन का लोगों के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। उन्हींके जीवन को आदर्श मानकर लोग दूसरों के क्लेश और दुःखों को मिटाने और अपनी ज़िन्दगी के सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

हर महापुरुष के मन में एक बड़ा विचार होता है, जिस को वह व्यावहारिक रूप से संसार के सामने लाने का प्रयत्न करता रहता है। वही उसका धर्म होता है। वही उसके चरित्र का प्राण होता है। वही उसके जीवन के चक्र का केन्द्र होता है। वही उसके कामों के मोतियों की माला की लड़ी हो जाती है। उससे बहुत से प्रश्नों का उत्तर मिलता है। उससे उस मनुष्य के कामों का भेद मालूम होता है। जिस प्रकार एक बड़े कारख़ाने में लोग सारी कलों को देखते हैं परन्तु एञ्जिन, जिसके बल से सारा काम चलता है, नहीं देखते, उसी प्रकार जब तक हम किसी महापुरुष के मन तक पहुंचकर उसके बड़े विचार को न समझें, तब तक हम उसके जीवन से ठीक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह महापुरुष प्रत्येक समय और प्रत्येक काम में भाग लेने के पहिले इस विचार को प्रत्येक मनुष्य के सामने प्रगट करता

रहे। कोई भी महापुरुष ओछे आदमियों की तरह सदैव अपने मन की बातें दूसरों के सन्मुख नहीं कहता रहता। अपनी तबियत के सम्पूर्ण अंगों को प्रत्येक भले बुरे मनुष्य को नहीं दिखाता रहता। वह अपने दुःखी मन के भावों को हर समय मित्र और शत्रु के सामने नहीं खोलता रहता, ताकि असावधान मित्र उसपर ठट्ठा का नमक छिड़कें और सावधान शत्रु उसे और घायल करें। जो मनुष्य गंभीर और बुद्धिमान होते हैं वे नीच और अदूरदर्शी मनुष्यों की भाँति अपने विश्वासों को पल पल में वर्णन नहीं करते, परन्तु उन्हें व्यवहार में लाकर दूसरों को दिखा देते हैं कि तुम भी ऐसा करो।

महापुरुषों का जीवन हम लोगों के लिए उन्नति का मार्ग दिखानेवाला होता है परन्तु वह हमारी बाढ़ रोकनेवाला घेरा, जिसके पार जाना पाप कहा जाता है, नहीं बन सकता। कोई महापुरुष नहीं चाहता कि उसके वाक्य और कार्य जातीय जीवन के लिए श्रृंखला बन जायें, जो युवा पुरुषों को आगे पैर रखने से रोकें। हम अपने महापुरुषों को अपना सहायक नहीं, बल्कि शत्रु बना देंगे, यदि हम सपूत होने के बदले कपूत होने ही को आज्ञापालन का लक्षण समझेंगे। जाति की उन्नति हर समय होती रहेगी। कौन है जो उसको रोक सके? कौन है जो अपने कामों को जातीय प्रवाह की धार रोकने के लिए बांध बनाना चाहता है? कौन है जो स्वयम् इस बात को न माने कि उसने भी समय के साथ नये विचार प्राप्त किये हैं? यदि कोई मनुष्य ऐसा है जो पत्थर के खम्भे की तरह एक ही स्थान पर खड़ा रहा हो और जातीय झुण्ड दूर निकल गया हो तो वह महापुरुष नहीं, वह कुम्भकरण है। वह "दकियानूसी" समय का एक नमूना है। अजायब-घर में रक्खे जाने के योग्य है। जातीय समाज में आने के योग्य नहीं। (अभ्युदय)